CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ध्रुवस्वामिनी

एक

अध्ययन

हि०१०३६
१८३६

भारती भवन, पटना—४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वर्ग संख्या................ प्राप्ति-संख्या...................

ग्रन्थ-कार्ड

श्री गणेश वर्णी दि० जैन (शोध) संस्थान

ग्रन्थागार

नरिया, वाराणसी-५

ग्रन्थ नाम ध्रुवस्वामिनी एक अध्ययन

लेखक...

लेनेवाले का	देनेकी	लेनेवालेका	लौटानेकी तिथि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ध्रुवस्वामिनी : एक अध्ययन

हि १०२६

एक अनुभवी प्रोफेसर

१८३६

भारती भवन
पटना–४

मूल्य : १·२५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हि॰ १०३६

१८३६

प्रकाशक की ओर से

'ध्रुवस्वामिनी' नाटक का प्रसादजी के नाटकों में तो एक विशिष्ट स्थान है ही, हिन्दी-नाटकों में भी इसका महत्त्व कम नहीं है। रंगमंच की दृष्टि से तो यह प्रायः प्रसादजी का सर्वश्रेष्ठ नाटक है। साथ ही यह प्रसाद जी का एकमात्र ऐतिहासिक नाटक है जिसमें नारी का विद्रोहात्मक स्वरूप प्रतिष्ठित किया गया है।

इसके महत्त्व के कारण ही यह भारतवर्ष के उन तमाम विश्वविद्यालयों में, जहाँ हिन्दी का अध्यापन होता है, किसी-न-किसी वर्ग में अध्ययन-ग्रंथ के रूप में स्वीकृत है ही। बिहार के सभी विश्वविद्यालयों में सम्प्रति इसका अध्यापन होता है।

अतः छात्रों की परीक्षा सम्बन्धी समस्याओं को ध्यान में रख कर ही प्रस्तुत ग्रंथ की रचना की गयी है। व्यर्थ का वाग्आडम्बर नहीं कर लेखक ने उतना ही भर लिखा है जितने से छात्रों का मतलब सध सके। यानी परीक्षाओं की वैतरणी वे कुशलतापूर्वक पार कर सकें। लेखक स्वयं एक विज्ञ प्राध्यापक हैं, अतः उन्हें छात्रों की कठिनाइयों का निकट से ज्ञान है।

नाटककार का व्यक्तित्व, उनकी रचनाओं का संक्षिप्त दिग्दर्शन, सभी पात्रों के चरित्रांकन एवं प्रमुख पात्रों के तुलनात्मक अध्ययन, इस ग्रंथ में उपस्थित किये गये हैं। नाटक में वर्णित नारी समस्या, तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक दशा इत्यादि के चित्रण भी पृथक् रूप से उपस्थित किये गये हैं। और आखिर इनके अतिरिक्त विश्वविद्यालय की परीक्षाओं में आते ही क्या हैं!

ध्रुवस्वामिनी का शायद ही कोई ऐसा अभागा पृष्ठ होगा जिसमें व्याख्या की कुछ पंक्तियाँ न हों! फिर प्रसाद जी की भाषा! सामान्य छात्र

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उन पंक्तियों को समझ नहीं पाते। फिर उनके गीतों में जो तरुणी के लावण्य की भाँति विचित्र सौन्दर्य और अर्थ-संश्लेषण होता है उसका आनन्द साधारण मस्तिष्क के छात्र नहीं ले पाते हैं। लेखक ने अत्यन्त सरल भाषा में स्पष्ट रूप से हर व्याख्येय पंक्ति की व्याख्या कर दी है। गीतों की व्याख्या अलग से विस्तारपूर्वक की गयी है। हमें यह कहने में तनिक भी संकोच नहीं होता है कि ये व्याख्याएँ छात्रों के लिए सहज बोधगम्य और ललित सिद्ध होंगी।

आशा है, छात्रगण इसे उसी प्रकार अपनायेंगे जिस प्रकार कंजूस धन को और मेघ जल-कण को।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रसाद जी का परिचय और व्यक्तित्व

कलाकार का शिव रूप :—कहते हैं कि कवि और कलाकार साक्षात् शिव-स्वरूप होते हैं। जिस प्रकार नृत्य करते हुए महाचिति नटराज के पदाघात से इस सृष्टि का संकोच और प्रसारण होता है, सृजन और संहार होता है; जिसके डमरू के स्वर से शब्दों का ब्रह्म-रूप प्रत्यक्ष होता है तथा जिसके श्रम-सीकरों से प्रतिक्षण अनन्त ब्रह्माण्डों का सर्जन होता रहता है उसी प्रकार कलाकार भी अपनी कला-कृतियों के माध्यम से एक अभिनव जगत् की सृष्टि करते हैं जहाँ मानव से बढ़ कर विश्व-मानव तक तथा पिण्ड से ले कर ब्रह्माण्ड तक का स्वरूप नाना रूपों में हमारे सामने प्रत्यक्ष हो जाता है।

कलाकार, यदि वह सच्चा कलाकार है तो तर्क-वितर्क की भूमि को छोड़ कर वह विचार और आनन्द के हिंडोले पर पेंगे भरता रहता है। इसके लिए उसे साधना करनी पड़ती है। इस साधना के फलस्वरूप जो उसे जीवन और जगत् के सत्य की ज्योति दीख पड़ती है, जड़-चेतन की पृष्ठभूमि में अर्द्धनारीश्वर की जो झाँकी मिलती है वह उसको इस जगत् के ऊपर उठा देती है तथा उसके जीवन को पावन प्रकाशयुक्त कर देती है। ऐसा कलाकार योगीवत् होता है। शिव महायोगी हैं, योगिराज हैं। इसी से कलाकार शिव-स्वरूप कहे जाते हैं।

कलाकार 'प्रसाद' :—जयशंकर प्रसाद इसी अर्थ में सच्चे योगी थे, महा साधक थे और साक्षात् शिव-स्वरूप थे। उनका सम्पूर्ण साहित्य उसी विचार और आनन्द के हिंडोले के बीच पेंगे भरने का परिणाम है। इसी से उनका साहित्य शाश्वत आनन्द के हिम-शिखर पर सौन्दर्य की विमल-धवल रजत-चंद्रिका के आवेष्टन में अवस्थित उस अलका के समान है जहाँ नटराज का निरन्तर नृत्य होता है और मानव-समूह जिनके छवि-दर्शन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

से चिरन्तन समरसता का सोम पान कर सुख के मानसर में अपने जीवन को पर्यवसित करता रहता है।

प्रसाद जी का जन्म और परिवार : हिन्दी साहित्य की इस महान् विभूति ने विश्वनाथ की पावन भूमि काशी में माघ शुक्ल दशमी संवत् १९४६ (१८८९ ई०) को एक सुप्रतिष्ठित तथा सुसम्पन्न वैश्य-परिवार में प्रथम बार अपनी पुलकित पलकें खोली थीं। उनके पितामह बाबू शिवरत्न प्रसाद तथा पिता श्री देवी साहु जी थे। उनका परिवार 'सुंघनी साहु' के नाम से प्रसिद्ध था जो अपनी उदारता, दानशीलता, परोपकारिता आदि के लिए अत्यन्त विख्यात था। इन्हीं कारणों से उनके पितामह और पिता का काशी-नरेश के समान ही काशी में सम्मान था तथा उनका अभिवादन लोग "हर हर महादेव" के पावन स्वरों से किया करते थे। काशी में अभिवादन के लिए "हर हर महादेव" का प्रयोग विरले गण्य-मान्य व्यक्तियों के लिए ही होता था, हमें यह भी ध्यान में रखना चाहिये। वैसे तो इनकी पारिवारिक वृत्ति जरदा, सुरती तथा तम्बाकू का व्यापार करना थी, जो अब तक चल रही है, किन्तु, इनका परिवार कोरा वणिक् परिवार नहीं कहा जा सकता। इनके यहाँ विद्वानों, पण्डितों और कवि-कोविदों की निरन्तर गोष्ठी होती ही रहती थी तथा वाणिज्य के साथ ही विद्या के प्रति अनुराग-वैशिष्ट्य इनके परिवार की निजी विशेषता थी। ऐसे ही साहित्यिक-सांस्कृतिक आवेष्टन में बाबू देवी प्रसाद साहु के दो पुत्र हुए—ज्येष्ठ शम्भूरत्न और कनिष्ठ जयशंकर प्रसाद।

प्रसाद जी का शैशव :—प्रसाद जी के जीवन-आकाश में शैशव के सुखों का बालारुण अपनी सुनहली किरणों के साथ आया ही था कि दुर्दिन के सावन-घन ने उसे शीघ्र ही आच्छन्न कर लिया। बचपन तो लाड़-प्यार में व्यतीत हुआ, पर काश! वह उन्हें जीवन भर सुख-सुविधाएँ दे पाता! बारह वर्षों की अल्पायु में ही काल ने उन्हें पिता के स्नेह और अनुशासन से वंचित कर दिया और पन्द्रह वर्ष की अवस्था तक आते-आते माता की शीतल-सुखदायिनी छाया भी छिन गयी। किन्तु, काल को बालक प्रसाद

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पर पड़े अपने कशाघात से अभी भी संतोष नहीं हुआ था। मंजुल-मना भावुक प्रसाद के लोचन-कोरक से अभी माता-पिता के विछोह के अश्रु सूख भी नहीं पाये थे, कपोलों पर पड़ी अश्रु-रेखाएँ अभी धुल भी नहीं पायी थीं कि उसने उन पर पुनः वज्रप्रहार किया। अभी जीवन की सतरहवीं सीढ़ी पर प्रसाद जी ने पाँव भी नहीं रखा था कि, उनके पिता-तुल्य एकमात्र सहोदर ज्येष्ठ भ्राता श्री शंभुरत्न प्रसाद जी भी उन्हें निस्सहाय छोड़ दिवंगत हो गये।

ऋण-ग्रस्त परिवार का सम्पूर्ण भार अब प्रसाद जी को ही वहन करना था। एक ओर हृदय में विपत्तियों की मार का असह दुःख, मन में परिवार-भार-वहन की चिन्ता और दूसरी ओर प्रसाद जी के परिवार से विक्षुब्ध कुछ स्वार्थी दुष्टों की लोभ भरी उन पर पड़ी निगाहें! वे सब मिल कर प्रसाद जी को, उनके परिवार को और उनके उद्योग-व्यवसाय के साथ उनकी मान-प्रतिष्ठा को छिन्न-भिन्न कर देने को जैसे एक साथ एकत्र हो गये हों।

किन्तु, परिस्थितियों की विषमता ने प्रसाद को विपदाओं का विषपान करने में अभ्यस्त तो बना ही दिया साथ ही संकटों को झेलने के लिए उनके हृदय में अपूर्व बल और अक्षय शक्ति भी भर दी। चट्टान की भाँति सुदृढ़ प्रसाद की छाती से इसी बीच कोमलता और करुणा तथा सौन्दर्य और आनन्द से आप्लावित काव्य-निर्झर भी फूट कर प्रवाहित होने लगा।

भ्रमण :—ग्यारह वर्ष की अवस्था में ही प्रसाद जी ने अपनी माता के साथ धारक्षेत्र, ओंकारेश्वर, पुष्कर, उज्जैन, जयपुर, ब्रजभूमि, अयोध्या इत्यादि स्थानों का परिभ्रमण किया था। उन्होंने कलकत्ता, पुरी, लखनऊ, प्रयाग की भी यात्रा की। इन कारणों से प्रकृति की सुरम्यता ने बचपन से ही प्रसाद को आकृष्ट कर लिया। कहते हैं कि अमरकंटक पर्वत-श्रेणी के बीच नर्मदा की नौका-यात्रा को प्रसाद जी जीवन-पर्यन्त नहीं भूल सके।

शिक्षा :—क्वींस कालेज, वाराणसी में प्रसाद जी ने सातवीं कक्षा तक शिक्षा पायी। तत्पश्चात् घर पर ही संस्कृत, अँगरेजी, फारसी, इतिहास

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इत्यादि की सम्यक् शिक्षा की उपयुक्त व्यवस्था इनके लिए की गयी। घर पर ये खूब दूध पीते और कसरत करते। घुड़सवारी तो बहुत दिनों तक करते रहे। पर यह सब तभी तक जब कि इनके माता-पिता जीवित थे। उनके शिवलोक सिधारने पर तो प्रसाद जी प्रायः भाई के साथ दूकान पर भी बैठने लगे थे। और भाई के मृत्यूपरान्त तो वे 'गृह कारज नाना जंजालाग्रस्त' ही हो गये।

फिर भी, काव्य-निर्झर का जो स्रोत शैशवावस्था में फूटा वह रुका नहीं, रुक सकता था भी नहीं,

> "इश्क पर ज़ोर नहीं, है ये वो आतश 'ग़ालिब'
> कि लगाये न लगे और बुझाये न बने।"

काव्य-सृजन :—दूकान पर बैठे-बैठे समस्यापूर्त्ति करने का रोग उन्हें लग चुका था और कभी-कभी मुक्तक पद रचना भी कर लिया करते थे। बही-खाते के पन्नों पर की गयी समस्यापूर्त्तियों का पता इनके अग्रज शंभुरत्न जी को भी लग चुका था जिसकी प्रतिक्रिया उन पर क्या हुई इसका पता नहीं। काव्य-सृष्टि का यही चस्का जो उन्हें आरंभ में लगा उसने उनसे हिन्दी-साहित्य के भाण्डार को भरने में कैसा योगदान दिया यह छिपा नहीं है। काव्य, कथा, उपन्यास, नाटक और गद्य गीत—उन्होंने क्या नहीं लिखा। और जिस विषय पर, जिस साहित्य-शिल्प पर उन्होंने कलम उठायी उसी में वे अद्वितीय सिद्ध हुए।

व्यक्तित्व की झलक :—प्रसाद जी का व्यक्तित्व बड़ा ही आकर्षक और भव्य था। वे अधिक लम्बे नहीं थे परन्तु शरीर उनका सुपुष्ट और गठा हुआ था। उन्नत ललाट। गौर वर्ण। पतले अधरोष्ठों पर सदा-सर्वदा मुसकान की तरल रेखा खिंची रहती थी। "पान का हलका रंग उनके ओठों को ताजगी और चमक दिये रहता था। प्रसाद जी घर पर प्रायः खद्दर के कुर्त्ते और धोती में रहा करते थे; परन्तु बाहर निकलने पर रेशमी कुर्त्ता, रेशमी गाँधी टोपी, महीन खद्दर की धोती, रेशमी चादर या दुपट्टा, फुल स्लीपर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जूते और हाथ में एक छड़ी रहती थी, प्रसाद जी को छड़ी रखने का विशेष शौक था, यद्यपि वह पूरी तरह अलंकार का ही काम देती थी।"

(जयशंकर प्रसाद : पृ० २३)

बनारस के जिस प्रसिद्ध मुहल्ले गोवर्द्धनसराय में प्रसाद जी का घर है वहीं घर के सामने शिव-मन्दिर, फुलवारी और अखाड़ा भी है। वे काफी वजनी मुग्दर भाँजा करते थे, काफी देर तक फुलवारी में बैठा करते थे या वहीं लोगों से मिला करते थे। वहाँ प्रायः वे काव्य-नाटक का सृजन भी किया करते थे। मन्दिर में तो प्रतिदिन पूजा होती ही थी।

प्रसाद जी परम शैव थे। शिव उनके अति प्रिय देवता थे। शैव-दर्शन में उन्हें अधिक रुचि थी जिसे वे जीवन और साहित्य में उतारने की सफल चेष्टा भी करते थे। इसी से उन्हें आधुनिक हिन्दी का अभिनव गुप्त भी कहा जाता है।

सभा-समितियों में न उनकी अधिक रुचि थी न कवि-गोष्ठियों में ही। पर छोटी-छोटी कवि-गोष्ठियों में कविता सुनाना उन्हें बुरा न लगता था। 'नागरी प्रचारिणी' के एक समारोह में उन्होंने 'आँसू' की पंक्तियों का सस्वर पाठ कर लोगों को झुमा दिया था।

प्रसाद जी अपने प्रबल से प्रबल विरोधियों के प्रति भी ईर्ष्या-भाव नहीं रखते थे। उन्होंने कभी अपनी आलोचना का उत्तर नहीं दिया। मित्रों से घुल-मिल कर दिल खोल कर बातें करने में प्रसाद जी बड़े पटु थे। नये-नये व्यंजन बनवा कर मित्रों को खिलाने में उन्हें अतीव आनन्द आता था। यही कारण है कि 'उनकी गोष्ठी से लोग प्रसन्न और हँसते हुए ही निकलते थे।' उदासीनता और म्लानता प्रसाद जी के निकट टिक ही नहीं सकती थी।

मृत्यु :—भारती का यह वरपुत्र अड़तालीस वर्ष की अल्पायु में ही १५ नवम्बर सन् १९३७ ई० को माँ भारती की निरन्तर सेवा करता हुआ शिवधाम को चला गया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"भारतवर्ष के इने-गिने आधुनिक श्रेष्ठ साहित्यकारों में प्रसाद जी का पद सदैव ऊँचा रहेगा, इसमें तो सन्देह ही क्या है; किन्तु मुझे कहना यह है कि अपने उद्देश्य के प्रति ऐसी एक निष्ठा मैंने किसी आधुनिक कलाकार में नहीं देखी। इसे आप बनारसी रंग कहें, या काशी की महिमा कहें, या 'प्रसाद' जी की अपनी सूझ कहें, संस्कृति कहें, जो कुछ चाहें कहें।

आज वह बनारसी रंग कहाँ है, वह काशी की महिमा कहाँ है, शक्ति का एकनिष्ठ उपासक वह आधुनिक शैव कहाँ है? हिन्दी-साहित्य के सर्वश्रेष्ठ नेता ......'प्रसाद जी' कहाँ हैं? हार मान कर कहना पड़ता है, प्रसाद जी अब नहीं रहे!"[१]

प्रसाद जी अपनी वाणी से युग को युग-युग का संदेश देते रहे और अंत में 'कामायनी' के रूप में अपनी अमर वाणी छोड़ कर सहसा चल बसे। हमें दुःख के साथ वह शेर दुहराना पड़ता है कि :—

"बड़े गौर से सुन रहा था जमाना
तुम्हीं सो गये दास्ताँ कहते कहते।"

प्रसाद जी का कृतित्व

पृष्ठभूमि :—प्रसाद जी नैसर्गिक कवि थे। चाहे वे कथा-उपन्यास लिख रहे हों या नाटक सर्वत्र उनका कवि रूप झलकता दीखता है। साहित्यकार के साहित्य की पृष्ठभूमि में उसका जीवन और व्यक्तित्व प्रमुख होते हैं। प्रसाद जी के साहित्य की पृष्ठभूमि के रूप में भी हमें उनके जीवन और व्यक्तित्व को सदैव याद रखना होगा। एक ओर जीवन में आये हुए संकटों का भार दूसरी ओर शास्त्रों के गहन अध्ययन आदि ने मिल कर प्रसाद के व्यक्तित्व का निर्माण किया था। जहाँ शैशवावस्था में ही उनके पिता,

१. जयशंकर प्रसाद : श्री नंददुलारे बाजपेयी पृ० २१।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

माता और भाई शिवलोक वासी हो गये वहाँ किशोरवस्था में ही अपनी दो-दो पत्नियों का देहान्त भी उन्हें देखना पड़ा। इसी कारण उन्हें तीन व्याह करने पड़े। विधवा भाभी का सकरुण मुख और लघु जीवन में माता, पिता, भाई तथा दो पत्नियों की मृत्यु का दुःखद स्मरण उनके मानस को कितना झकझोरता होगा यह सहज समझा जा सकता है। स्यात् इसी से वे नियति और भाग्य पर अधिक भरोसा करने लग गये थे। उधर उन्होंने संस्कृत-साहित्य और शास्त्र का विशद अध्ययन भी किया था। उपनिषद्, शैव-दर्शन,-बौद्ध-दर्शन, प्राचीन इतिहास आदि के सम्यक् अध्ययन और परिपक्व ज्ञान ने उनके साहित्य को जो स्थिरता प्रदान की वह भी उनकी रचनाओं के अध्ययन से जाना जा सकता है।

प्रसाद जी ने काव्य, कथा, उपन्यास और नाटक सब कुछ लिखे किन्तु, जैसा प्रायः हर साहित्यकार के साथ होता है, उन्होंने अपना साहित्यिक जीवन काव्य-सृजन से ही प्रारंभ किया।

काव्य-कृतियाँ :—उनकी सर्वप्रथम कविता काशी के 'इन्दु' में प्रकाशित हुई। १६११ ई० तक कई कविता संग्रह उन्होंने प्रकाशित कराये। यथा—कानन-कुसुम, प्रेम-पथिक, चित्राधार और महाराणा का महत्त्व। आँसू, जिसका प्रकाशन १६२५ ई० में हुआ, उसने प्रसाद को एकबारगी हिन्दी-संसार में अप्रतिम सिद्धि और प्रसिद्धि दी। फिर तो प्रसाद काव्य-कैलाश के सर्वोच्च शिखर पर आसीन हो गये। करुणालय, आँसू, लहर, झरना और कामायनी प्रसाद के काव्य-विकास की चरम सिद्धि के क्रमिक सोपान हैं। कामायनी तो प्रसाद जी का सर्वोत्कृष्ट काव्य-निदर्शन है जिसमें 'सर्वाङ्गपूर्ण जीवन-दर्शन, नारी-पुरुष का सम्पूर्ण चित्रण और नयी परिस्थितियों का व्यापक निरूपण है।' थोड़े में कहा जा सकता है कि तुलसी के रामचरित मानस के वाद प्रसाद की कामायनी ही एकमात्र हिन्दी का वह गौरव ग्रन्थ है जिससे मानवता को अक्षय शान्ति का, अनन्त आनन्द का और संतुलित जीवन-सुख का शीतल आलोक मिल सकता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कहानियाँ :—जिस प्रकार हिन्दी काव्य की प्रसाद ने अभिनव शोभा-वृद्धि की उसी भाँति कथा-साहित्य का भी उन्होंने विलक्षण शृंगार किया। आधुनिक मौलिक कथाओं का सूत्रपात भी हम एक प्रकार से प्रसाद की कथाओं से ही मान सकते हैं। 'ग्राम्या' उनकी प्रथम मौलिक कथा है। इसके पश्चात् तो उन्होंने पाँच कथा-संग्रह प्रकाशित कराये जिनके नाम हैं—आकाशदीप, इन्द्रजाल, छाया, आँधी और प्रतिध्वनि।

प्रसाद की कहानियाँ कल्पना-प्रधान हैं। प्रकृति के उन्मुक्त वातावरण में विस्मयकारक तथा साहसपूर्ण घटनाओं की संयोजना कर मनोवैज्ञानिक और सांस्कृतिक चित्रण करने में प्रसाद जी विशेष कुशल सिद्ध हुए हैं। अतीत के मोह के कारण उनकी कथाओं में काव्यात्मकता का समावेश हो गया है तथा भाषा में आलंकारिक ऐश्वर्य मुखर हो उठा है। 'आकाशदीप' और 'गुंडा' उनकी प्रतिनिधि कहानियाँ हैं।

उपन्यास :—प्रसाद ने तीन उपन्यास लिखे। दो सम्पूर्ण और एक अधूरा। 'कंकाल' उनका प्रथम उपन्यास है। यह विचार-प्रधान है। इसमें प्रसाद जी ने समाज के उच्च और अभिजात वर्ग के लोगों की वास्तविक परख कर उनके खोखले स्वरूप का चित्रण किया है। जो समाज ऊपर से अपने गौरव के दंभ में फूला नहीं समाता है वह भीतर से कितना जीर्ण है, कितना पतित, उसका यथार्थ स्वरूप अंकित कर वे प्रेमचंद से भी एक डेग आगे चले जाते हैं, तथा वाल्टर स्कॉट और विक्टर ह्यूगो के समकक्ष ठहरते हैं।

'तितली' में अधिक कलात्मकता है। इसमें उन्होंने ग्रामीण नव-निर्माण के लिए सहयोगिता और सहकारिता को आधार-स्तंभ बताया है। तितली, एक ग्रामीण किसान बालिका, इसकी नायिका है।

'इरावती' उनका अपूर्ण उपन्यास है। यह ऐतिहासिक आधार पर रचा जा रहा था। पर अकाल-मृत्यु ने प्रसाद जी को ऐतिहासिक उपन्यास-रचना से सदा के लिए वंचित कर हिन्दी-जगत् का बड़ा अपकार किया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नाटक :—प्रसाद जी ने प्रायः एक दर्जन नाट्य-ग्रंथों का प्रणयन किया। उनके नाटकों के क्रमिक विकास का निदर्शन करना आवश्यक होगा। अतः उनकी प्रकाशन-तिथियों के साथ उन्हें उपस्थित किया जाता है :—

(१)	सज्जन	१९१०-११ ई०
(२)	करुणालय	१९१२ ई०
(३)	प्रायश्चित्त	१९१४ ई०
(४)	राज्यश्री	१९१५ ई०
(५)	विशाख	१९२१ ई०
(६)	अजातशत्रु	१९२२ ई०
(७)	जनमेजय का नागयज्ञ	१९२६ ई०
(८)	कामना	१९२७ ई०
(९)	स्कंदगुप्त	१९२८ ई०
(१०)	चन्द्रगुप्त	१९३१ ई०
(११)	एक घूँट	१९३० ई०
(१२)	ध्रुवस्वामिनी	१९३३ ई०

नाटकों की इस विस्तृत सूची से सहज ही ज्ञात हो जाता है कि प्रसाद जी हिन्दी के एकमात्र सर्वश्रेष्ठ नाटककार हैं। भारतेन्दु के बाद नाटक-साहित्य में नये चरित्र, नूतन घटना-योजना, नवीन ऐतिहासिक आधार, आदि एक साथ ले कर प्रसाद जी ही अवतीर्ण हुए। हिन्दी-नाटकों में प्रसाद जी ने नया युग-प्रवर्तन ला दिया।

ऐतिहासिकता :—'कामना' और 'एक घूँट' को छोड़ कर प्रसाद जी के सभी नाटक ऐतिहासिक हैं। उनके अनुसार—"इतिहास का अनुशीलन किसी भी जाति को अपना आदर्श संगठित करने के लिए अत्यंत लाभदायक होता है ··क्योंकि हमारी गिरी दशा को उठाने के लिए हमारी जलवायु के अनुकूल जो हमारी अतीत सभ्यता है उससे बढ़ कर उपयुक्त कोई भी आदर्श हमारे अनुकूल होगा कि नहीं इसमें मुझे पूर्ण सन्देह है।"[१]

१. विशाख की भूमिका।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हर्ष-पूर्व भारत को हम स्वर्णयुगीन भारत कह सकते हैं। सम्राट् हर्ष की मृत्यु के उपरान्त भारत ने अवनति के काले दिन देखे। यवनों के आक्रमण से पूर्व ही भारत की अवनति होने लग गयी थी। प्रसाद जी अतीत भारत के गौरव-कालीन युग का चित्र हमारे समक्ष उपस्थित कर हममें नवचेतना, नवोद्बोधन तथा नव-जागरण का प्रदीप जलाना चाहते थे। इसी से उन्होंने सम्राट् हर्ष के पूर्व के भारत का उज्ज्वल रूप अपने नाटकों के द्वारा हमारे सामने रखा। "इसके लिए उसने महा-भारत-युद्ध के बाद से ले कर हर्षवर्धन के राज्य-काल तक के भारतीय इतिहास को अपना लक्ष्य बनाया है। क्योंकि यही भारतीय संस्कृति की उन्नति और प्रसार का स्वर्ण युग कहा जाता है। जनमेजय-परीक्षित से आरंभ हो कर यह स्वर्ण युग हर्षवर्धन तक आया है। बीच में बौद्ध-काल-मौर्य और गुप्त-काल ऐसे हैं जिनमें आर्य-संस्कृति अपने उच्चतम उत्कर्ष पर पहुँची है। अतएव तत्कालीन उत्कर्षापकर्ष के यथार्थ विभाग के अभिप्राय से लेखक ने कुछ विशिष्ट प्रतिनिधियोंको चुन कर उनके कुल-शील और जीवन-वृत्त के द्वारा उसमें रसोद्बोधन की चेष्टा की है जो वर्त्तमान को जीवित रखने में सहायता कर सके।"[१]

राष्ट्रीयता :—इसलिए प्रसाद के नाटकों में राष्ट्रीयता और देश-प्रेम कूट-कूट कर भरे हुए हैं। अजातशत्रु से ले कर स्कंदगुप्त और चंद्रगुप्त तक सभी नाटकों में यही भावना काम कर रही है। चंद्रगुप्त नाटक का यह गीत—

'अरुण यह मधुमय देश हमारा
जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा।'

तो हमारा राष्ट्रीय गीत बन गया है।

कवित्व और दार्शनिकता :—ऐतिहासिकता और देशप्रेम के अतिरिक्त प्रसाद के नाटकों में हम कवित्व और दार्शनिकता का भी पूर्ण समावेश

१. डा० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा : प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन, पृ० २५५।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पाते हैं। जहाँ उनके नाटकों की भाषा रह-रह कर कवित्वमय हो उठती है वहाँ उनके पात्र भी समयानुकूल दार्शनिक हो उठते हैं, कोई पात्र बौद्ध-दर्शन की क्षणिकता का उल्लेख करता है तो कोई शैव-दर्शन की समरसता का और कोई औपनैषदिक विचारधारा का।

इनके पात्र या नाटकों के नायकों में बाह्य द्वन्द्व या अन्तर्द्वन्द्व के ज्वार-भाटे भी उठते-गिरते रहते हैं तथा नायकों में प्रतिद्वन्द्विता भी रहती है। अजातशत्रु में तो प्रतिद्वन्द्वियों की भरमार है।

नर और नारी पात्र :—स्त्री-पात्रों के निर्माण में प्रसाद जी अधिक पटु हैं। सुतरां, उनके नारी-पात्र पुरुष-पात्रों से अधिक सफल हैं। 'देवसेना तो नारी की कोमल भावनाओं की मूर्त्ति है। उसके रूप में सौन्दर्य, संगीत, काव्य, प्रकृति और त्याग व बलिदान साकार हो कर ही बोलने लगा है।' मागंधी अपरिमित रूप-राशि और अनियंत्रित वासना की दीपशिखा है तो छलना राजनीति के दाव-पेंच की पुजारिनी है। ध्रुवस्वामिनी युग-युग की पदमर्दित नारी की विद्रोहात्मक वाणी है तो कोमा कोमलता की वह साकार प्रतिमा जिसमें भारतीय नारी का जीवन-स्वरूप है। देवसेना करुणा की देवी है और त्याग की प्रतिमूर्त्ति। इसी प्रकार यौवन की मदिरा से उन्मत्त सुवासिनी, महत्त्वाकांक्षिणी विजया और त्यागमयी मल्लिका प्रसाद के ही नारी-पात्र हैं। वासवी और देवकी नारी नहीं देवियाँ हैं।

वस्तु-विधान :—प्रसाद के नाटकों का वस्तु-विधान शास्त्रीय पद्धति और पश्चात्य नाट्य सिद्धान्त का समन्वित रूप है। इसी से उनके नाटक न सुखान्त हैं न दुःखान्त बल्कि प्रसादान्त।

गीत :—गीतों की तो उनके नाटकों में भरमार है। कुछ पात्रों को तो गाने की बीमारी जैसी लगती है। समय-कुसमय का तनिक न ध्यान। अतः उनके गीत किसी-किसी नाटक में भार-स्वरूप हो गये हैं। कोई-कोई तो यहाँ तक कह देते हैं कि वे पहले के बनाये गीतों को भी नाटकों के बीच-बीच में

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ठूँस देते हैं। प्रसाद जी ने आगे के नाटकों में गीतों में बहुत कमी इसी से कर दी। जो भी हो प्रसाद के गीत नाटकों के शृंगार हैं। उनके कुछ गीत तो हिन्दी में अकेले हैं। रूप, यौवन, मादकता, करुणा, देश-प्रेम इत्यादि के ऐसे-ऐसे रम्य और सरस गीत प्रसाद के नाटकों में प्राप्त होते हैं जिनका नाटकों में उपयोग तो है ही पर स्वतंत्र रूप में भी वे गीत अपना महत्त्व नहीं खोते।

(अ) तुम कनक किरण के अंतराल में
लुक छिप कर चलते हो क्यों ? (चंद्रगुप्त)

(आ) आज इस यौवन के माधवीकुंज में कोकिल बोल रहा (स्कंदगुप्त)

(इ) अस्ताचल पर युवती संध्या की
खुली अलक घुंघराली है (ध्रुवस्वामिनी)

आदि गीत यौवन की मादकता की अप्रतिम वाणी हैं।

'बहुत छिपाया उफन पड़ा अब
सँभालने का समय नहीं है
अखिल विश्व में सतेज फैला
अनल हुआ यह प्रणय नहीं है।' (अजातशत्रु)

इसमें प्रेम की पीड़ का स्वर है। वासना की झाँझ की झंकार है।
और—

(अ) 'अरुण यह मधुमय देश हमारा' (चंद्रगुप्त)

(आ) हिमाद्रि तुंग शृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती
स्वयं प्रभा समुज्ज्वला स्वतंत्रता पुकारती (चंद्रगुप्त)

(इ) पैरों के नीचे जलधर हों, बिजली से उनका खेल चले (ध्रुवस्वामिनी)

आदि गीत श्रोताओं के हृदय में राष्ट्र-प्रेम, ओज और उत्साह भरने में अद्वितीय हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कथोपकथन :—प्रसाद जी के नाटकों में कथोपकथन जीवन की परिस्थितियों के अनुकूल ही आये हैं। उन कथोपकथनों में काव्यात्मक और तत्सम संश्लिष्ट भाषा का प्रयोग कराना ही प्रसाद जी को रुचिकर रहा। कुछ लोगों ने इसे दोष बताया। पर प्रसाद जी साहित्य को सामाजिकों का स्तर उन्नत कराने का साधन मानते थे। अतः निम्न स्तर के पाठकों या सामाजिकों को उच्च साहित्य के धरातल तक आकर ही प्रसाद के नाटकों को समझना होगा। इसी से प्रसाद जी अपनी भाषा में उर्दू, फारसी, अँगरेजी, हिन्दी सबकी खिचड़ी पकाना आवश्यक नहीं मानते थे।

स्वगत-भाषण और हास्य-विधान :—स्वगत-भाषण और हास्य का विधान भी उनके नाटकों में हम यथावसर पाते हैं। उनका हास्य-विधान परम्परित और संस्कृत नाटकों के जैसा ही होता था। कुबड़ों, बौनों तथा पेटू पात्रों द्वारा ही वे प्रायः हास्य की योजना करते पाये जाते थे। थोड़े में, उनका हास्य-विधान अधिक परिष्कृत नहीं माना जा सकता।

अभिनेयता :—अभिनेयता की दृष्टि से कुछ लोग प्रसाद के नाटकों को अनुपयुक्त मानते हैं। पर प्रसाद जी मंच के अनुकूल नाटक को नहीं बल्कि नाटकों के अनुकूल मंच को होना पसंद करते थे। वैसे बाद में ध्रुवस्वामिनी जैसे नाटकों को उन्होंने अभिनय की दृष्टि से ही छोटा और मंचानुकूल लिखा पर उनके अन्य नाटक भी काफी सफलता से अभिनीत हो चुके हैं। इस विज्ञान के युग में अब यह दोष प्रसाद जी पर नहीं मढ़ा जा सकता कि उनके नाटक मंच के अनुकूल नहीं हैं, जबकि प्रकाश और छाया (Light & Shade) के द्वारा अब हर परिस्थिति के अनुकूल मंच बनाये जा सकते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ध्रुवस्वामिनी की कथा-वस्तु

पृष्ठभूमि :—ध्रुवस्वामिनी लिच्छवि-राज की कन्या थी। सम्राट् समुद्रगुप्त के पुत्र चन्द्रगुप्त को वह विजयोपहार के रूप में दी गयी थी। चन्द्रगुप्त सच्चे अर्थ में वीर था। किन्तु सम्राट् समुद्रगुप्त की मृत्यु के पश्चात् परिषद् के निर्णय और अमात्य शिखर स्वामी की नीति के फलस्वरूप ध्रुवस्वामिनी का व्याह समुद्रगुप्त के बड़े पुत्र रामगुप्त से हो गया। समुद्रगुप्त ने चन्द्रगुप्त की वीरता और पराक्रम पर मुग्ध हो कर राज्याधिकार भी उसे ही सौंपा था। परन्तु न उसे ध्रुवस्वामिनी मिली न राज्य सिंहासन। रामगुप्त दुर्बल, कायर और क्लीव था। वह मद्यप और हिजड़ों, बौनों के नृत्य में डूबा भी रहता था। ध्रुवस्वामिनी का चन्द्रगुप्त के प्रति स्वाभाविक आकर्षण और अनुराग था। किन्तु वह व्याही तो गयी थी रामगुप्त से। रामगुप्त को इतना अवकाश कहाँ कि वह अपनी परिणीता से प्रणय भरी दो टूक बातें भी कर सके। इसके विपरीत उसे अपनी पत्नी के आचरण पर सन्देह ही रहा करता था। खड्गधारिणी (दासी) ने ध्रुवस्वामिनी के चन्द्रगुप्त के प्रति अनुराग को छल से जान कर रामगुप्त को जता दिया था। इससे वह और भी विक्षुब्ध और कठोर हो गया।

इसी समय शकों के अधिपति शकराज ने रामगुप्त को यह सूचना भेजी कि या तो वह उसके लिए अपनी पत्नी ध्रुवस्वामिनी और उसके सैनिकों के लिए सामन्तों की पत्नियों को उपहार-स्वरूप भेज दे या युद्ध के लिए सन्नद्ध हो जाय। रामगुप्त ध्रुवस्वामिनी से मुक्ति चाहता था ही। राज्य की रक्षा युद्ध करके वह कर ही नहीं सकता था। उसके अमात्य ने भी यही राय दी कि राज्य की रक्षा किसी भी कीमत से राजा को करनी ही चाहिये। बेचारी ध्रुवस्वामिनी लाख रोई, गिड़गिड़ाई पर उसकी कौन सुनता है। वह रामगुप्त के विलास की सहचरी भी होने को तैयार होती है किन्तु शक शिविर में

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जाना नहीं पसन्द करती। मगर मद्यप रामगुप्त किसी भी स्थिति में उसे रखना नहीं चाहता था। हार कर ध्रुवस्वामिनी कटार मार कर अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा करना चाहती थी। तभी चन्द्रगुप्त आ गया, उसने उसे मरने से, आत्महत्या करने से रोका।

अंत में ध्रुवस्वामिनी शक शिविर में जाने को तैयार होती है। चन्द्रगुप्त भी नारी वेश में उसके साथ ही जाता है। ध्रुवस्वामिनी शकराज से एकान्त में अकेले मिलने का अनुरोध करती है। शकराज कामलिप्त था। वह तैयार हो गया। एकान्त पा कर चन्द्रगुप्त उससे युद्ध करता है और उसकी हत्या कर डालता है। शकराज की सेना छिन्न-भिन्न हो गयी।

शकराज की प्रणयिनी कोमा थी। वह अपने पिता मिहिरदेव के साथ उसकी लाश लेने गयी। ध्रुवस्वामिनी ने लाश दे दी। पर रामगुप्त के सैनिकों ने उन दोनों की भी हत्या कर दी। इससे अन्य सामंतों को रामगुप्त से घृणा हो गयी।

सबने मिल कर चन्द्रगुप्त को राजा और ध्रुवस्वामिनी को राजमहिषी होने की घोषणा की। राजपुरोहित ने भी रामगुप्त से ध्रुवस्वामिनी के सम्बन्ध-विच्छेद को शास्त्रोचित बताया। ऐसी स्थिति में रामगुप्त चन्द्रगुप्त पर कटार का प्रहार करने को सन्नद्ध ही था कि तब तक पीछे से एक सामंत ने रामगुप्त पर प्रहार कर उसका वध कर दिया। चन्द्रगुप्त सम्राट् और ध्रुवस्वामिनी महादेवी घोषित हुई।

इस कथा-वस्तु को तीन अङ्कों में विभक्त कर प्रसाद जी ने ध्रुवस्वामिनी का प्रणयन किया है। हर अङ्क में एक-एक दृश्य है तथा सम्पूर्ण घटनाएँ एक ही स्थान पर घटित हुई हैं।

प्रथम अङ्क

रामगुप्त के शिविर के एक कोने से ध्रुवस्वामिनी आ कर उदासमना हो सामने के पर्वत की ओर देखती है। वह उस पर्वत के कठोर शिखर और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उसके नीचे फैली लताओं को देख कर सोचती है कि पुरुष भी ऐसे ही कठोर होते हैं तथा नारी इन निरीह लताओं की भाँति उनके चरणों पर लोटती ही रहती है। उसका मन विक्षुब्ध हो जाता है। उसके साथ ही खड्गधारिणी दासी भी है जो पहले तो शैलमाला की तरह ही मौन रहने का अभिनय करती है पर बाद में कुमार चन्द्रगुप्त के प्रति ध्रुवस्वामिनी के हार्दिक भावों को जानने के लिए उनसे सशंकित बनी सम्भाषण करती है। ध्रुवस्वामिनी उस 'निरभ्र प्राची के बाल-अरुण' कुमार चन्द्रगुप्त के लिए अपना आन्तरिक अनुराग प्रकट करती है और उनकी बंदी अवस्था पर अपना विक्षोभ।

रामगुप्त को ध्रुवस्वामिनी के चन्द्रगुप्त के प्रति गुप्त अनुराग का पता खड्गधारिणी (दासी) से चल जाता है। उनके मन में एक झंझावात-सा चलने लगता है। उसी समय प्रतिहारी का प्रवेश होता है। वह शकों द्वारा शिविर घेर लिये जाने तथा शकराज द्वारा भेजे गये दूत के विषय में राजा को सूचित करता है। शिखर स्वामी आ कर शकराज का पत्र रामगुप्त को पढ़ने के लिए देता है। पत्र पढ़ते-पढ़ते वह चौंक उठता है। किंतु अमात्य शिखर स्वामी चौंकने की अपेक्षा शकराज की शर्त्तें मान लेने की राय देता है। कुछ सोच कर भीतर और बाहर के सब शत्रुओं को एक ही चाल में परास्त कर देने की लालसा से रामगुप्त अमात्य की राय मान कर ध्रुवस्वामिनी और सामन्त-पत्नियों को शक-शिविर में भेजने का निश्चय करता है।

अमात्य ध्रुवस्वामिनी से मिलने आते हैं। रामगुप्त हिजड़ों, कूबड़ों और बौनों के नृत्य का आनन्द-रस पी रहे थे। ध्रुवस्वामिनी की क्रोधाग्नि भभक उठी। शिखर स्वामी रामगुप्त से ध्रुवस्वामिनी के शक-शिविर में भेजने की बात करता है। रामगुप्त ध्रुवस्वामिनी से प्रथम सम्भाषण में इसी के सम्बन्ध में पूछता है। ध्रुवस्वामिनी तो जल उठी। बोली—"गुप्त-साम्राज्य क्या स्त्री-सम्प्रदान से ही बढ़ा है?"...मैं जानना चाहती हूँ कि किसने सुख दुःख में मेरा साथ न छोड़ने की प्रतिज्ञा अग्निवेदी के सामने की है? पर रामगुप्त कहता है कि वह तो उस दिन द्राक्षासव में डुबकी लगा रहा था। आखिर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

महादेवी अपने को शक-शिवर में भेजे जाने का घोर विरोध करती है। वह अनुनय के स्वर में यहाँ तक कहती है कि—"राजा, आज मैं शरण की प्रार्थिनी हूँ। मैं स्वीकार करती हूँ कि आज तक मैं तुम्हारे विलास की सहचरी नहीं हुई। किंतु वह मेरा अहंकार चूर्ण हो गया है। मैं तुम्हारी हो कर रहूँगी। राज्य और सम्पत्ति रहने पर राजा को—पुरुष को बहुत-सी रानियाँ और स्त्रियाँ मिलती हैं; किन्तु व्यक्ति का मान नष्ट होने पर फिर नहीं मिलता।" लेकिन रामगुप्त एक नहीं सुनता है।

विक्षुब्ध हो कर ध्रुवस्वामिनी आत्महत्या करना चाहती है। तभी चन्द्रगुप्त का प्रवेश होता है। वह उसे आत्महत्या करने से रोकता है तथा रामगुप्त का आदेश जान कर विक्षुब्ध होता है। अंत में वह स्वयं ध्रुवस्वामिनी का वेश धारण कर शक शिविर में जाना चाहता है। पर अमात्य की राय और रामगुप्त के आदेश से ध्रुवस्वामिनी को भी शक-शिविर में जाना पड़ता है। दोनों साथ ही जाते हैं। उसी समय मन्दाकिनी ओज और उत्साहपूर्ण गीत गाती हुई दोनों को विदा करने आती है। दोनों धीरे-धीरे शक-शिविर की ओर विदा होते हैं।

द्वितीय अङ्क

कोमा जो शकराज की प्रेमिका है अपने प्रेम पर सोचती हुई उदास-सी सीढ़ी पर बैठ जाती है। वह देखती है कि शक शिविर में सब जैसे रक्त के प्यासे! प्राण लेने और देने में पागल! वसन्त का स्पर्श किसी को होता भी या नहीं, पता नहीं। फिर भी वह शकराज के प्रति अपना अनुराग सुरक्षित रखना चाहती है। वह सोचती है—"हो पागलपन, भूल हो, दुःख मिले, प्रेम करने की एक ऋतु होती है। उसमें चूकना, उसमें सोच-समझ कर चलना, दोनों बराबर है।"

तभी शकराज अपने दूत खिंगल के नहीं आने की चिंता से घूमता आता है। कोमा देख कर उससे बातें करने लगता है। कोमा उसे मनुष्य बने रहने का आग्रह करती है और फिर शकराज के आग्रह पर मदिरा लाने चली जाती है।

ध्रु०—२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उसी समय खिंगल आता है और ध्रुवस्वामिनी तथा सामन्त-पत्नियों के आने की सूचना देता है। शकराज हर्षोन्मत्त हो सोने की झाँझ वाला नाच करने की आज्ञा देता है। फिर सामन्तों का मदिरा पान और नर्तकियों का नृत्य होता है।

रात होती है। दुर्ग तोरण में पालकियाँ आती हैं। खिंगल कहता है कि ध्रुवस्वामिनी एकान्त में शकराज से मिलना चाहती है। वह सहर्ष आज्ञा देता है। कोमा पीछे खड़ी रह कर सब कुछ सुनती है और शकराज को पर-नारी के साथ अपने गर्व की तृप्ति के लिए अनर्थ करने से रोकती है। पर वह उसकी हँसी उड़ा कर टाल देता है। साथ ही मिहिर देव का भी अपमान करता है जो कोमा के पितृव्य और महाज्योतिषी हैं। मिहिर देव धूमकेतु की ओर देख भावी अमंगल की सूचना दे वहाँ से प्रस्थान करता है। कुछ देर के बाद कोमा भी उसे छोड़ चली जाती है।

शकराज अकेले ध्रुवस्वामिनी से मिलने की प्रतीक्षा करता है। ध्रुवस्वामिनी के साथ चन्द्रगुप्त भी नारी-वेश में शकराज के समक्ष उपस्थित होते हैं। शकराज पहचान नहीं पाता कि कौन ध्रुवस्वामिनी है। वे दोनों ही अपने को ध्रुवस्वामिनी कहते हैं। अंत में चंद्रगुप्त और शकराज में द्वन्द्व युद्ध होता है। इसमें शकराज की हत्या होती है। 'ध्रुवस्वामिनी की जय' का स्वर-घोष फैल जाता है। रक्ताक्त कलेवर सामन्त कुमार चन्द्रगुप्त और ध्रुवस्वामिनी को घेर कर समवेत स्वर से जय-जयकार करते हैं।

तृतीय अङ्क

शक शिविर में एक सैनिक आकर ध्रुवस्वामिनी से मिलता है और राजाधिराज रामगुप्त के आने की सूचना देता है। वह कहती है कि अभी वह थकी है। वह कुमार के घाव के विषय में भी उसी सैनिक से पूछती है। तभी मंदाकिनी आकर महादेवी को पहले भाभी कहती है और फिर क्षमा माँगती हुई महादेवी कह कर बधाई देती है। महादेवी को यह अच्छा नहीं लगा। वह मंदाकिनी से भाभी कहलाना चाहती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तभी पुरोहितजी आते हैं और ध्रुवस्वामिनी से उपद्रवों के बाद शान्ति-कर्म के लिए स्वस्त्ययन करने कहते हैं। पर ध्रुवस्वामिनी अपने को महादेवी मानती ही नहीं। वह तो पुरोहितजी तथा सारे कर्मकांड और शास्त्र-पुराण को मिथ्या बताती हुई अपने राक्षस-विवाह की चर्चा करती है और पंडितजी को काफी फटकारती है।

इसी समय मिहिर देव के साथ कोमा का प्रवेश होता है। वे दोनों ध्रुवस्वामिनी से शकराज की लाश माँगते हैं। उन्हें लाश मिल जाती है। चन्द्रगुप्त आता है और उसे मंदाकिनी बताती है कि लाश ले कर जाते हुए आचार्य और उसकी कन्या का रामगुप्त के सैनिकों ने वध कर डाला। फिर कुछ सामन्त कुमार ध्रुवस्वामिनी से कहते हैं कि आपकी आज्ञा के विरुद्ध राजाधिराज ने निरीह शकों का संहार करवा दिया है। वे रामगुप्त को हिंसक, पाखंडी, क्षीव और क्लीव कहते हैं।

उसी समय रामगुप्त आता है और क्रुद्ध हो चंद्रगुप्त को वन्दी बना लेता है। ध्रुवस्वामिनी के कहने पर भी चन्द्रगुप्त इसका विरोध नहीं कर शान्त बना रहता है। रामगुप्त ध्रुवस्वामिनी को महादेवी कह कर चुप रहने का आदेश देता है। पर वह इसे नहीं मानती कि वह उसकी सहधर्मिणी है या महादेवी है। इस पर रामगुप्त उसे भी बन्दी बनाने का आदेश देता है। किन्तु ध्रुवस्वामिनी को बन्दी बनाने को सैनिक ज्यों ही आगे बढ़ता है कि चन्द्रगुप्त आवेश में आकर लौह शृंखला तोड़ डालता है। इससे सभी भयभीत हो जाते हैं। शिखर स्वामी अब चन्द्रगुप्त का समर्थन करने लगता है। राज्य परिषद् भी चन्द्रगुप्त को राजा और ध्रुवस्वामिनी को महादेवी मानती है। पुरोहितजी आ कर ध्रुवस्वामिनी को रामगुप्त से सम्बन्ध विच्छेद की अनुमति देते हैं और उसके चन्द्रगुप्त के साथ विवाह होने का शास्त्रानुकूल अनुमोदन करते हैं। इस पर रामगुप्त पुरोहित को डाँटते हैं। पर उन्हें मृत्यु का भय नहीं। वे अपने को मात्र धर्म से भयभीत मानते हैं। अंत में पुरोहित, परिषद् और शिखर स्वामी को भी चन्द्रगुप्त का पक्ष समर्थन करते हुए देख रामगुप्त चन्द्रगुप्त को कटार से

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मारना चाहता है। तब तक एक सामन्त कुमार रामगुप्त पर प्रहार कर उसे मार डालता है। लोग 'चन्द्रगुप्त और ध्रुवस्वामिनी की जय' कर उठते हैं।

ध्रुवस्वामिनी के पात्रों का चरित्राङ्कन

ध्रुवस्वामिनी

ध्रुवस्वामिनी 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक की नायिका है। वह अत्यधिक सशक्त और आत्माभिमान पूर्ण नारी है। युग-युग से पददलित, लांछित और पुरुषों की क्रीत दासी की भाँति घुट-घुट कर जीवन यापन करने वाली नारियों की विद्रोह की वाणी ध्रुवस्वामिनी के व्यक्तित्व में साकार हो उठी है।

उसके जीवन का आरम्भ ही पुरुषों की स्वेच्छाचारिता का ज्वलंत प्रतीक है। चन्द्रगुप्त से पराजित ध्रुवस्वामिनी के पिता ने उसे समुद्रगुप्त के विजयोपलक्ष में, उपहार के रूप में चन्द्रगुप्त के लिए दान कर दिया। आयी थी वह चन्द्रगुप्त के लिए। वह भी स्वेच्छा से नहीं, पिता के दानस्वरूप। और वह तब भी व्याह दी गयी रामगुप्त से, जो चन्द्रगुप्त का अग्रज था। ऐसा लगता है मानों इन सब कर्मों में उसके विचार की कोई आवश्यकता ही नहीं थी जैसे वह जड़ पदार्थ थी जिसे जब जिधर चाहा फेंक दिया। स्वभावतः उसके मन में विक्षोभ और पुरुषों के प्रति असंतोष का भाव जगता है। नाटक के प्रारम्भ में ही वह कह उठती है—"सीधा तना हुआ, अपने प्रभुत्व की साकार कठोरता, अभ्रभेदी उन्मुक्त शिखर! और इन क्षुद्र निरीह लताओं के और पौधों को इसके चरण में लोटना ही चाहिये न!" उसका यह वाक्य पुरुषों की कठोरता, नृशंसता और स्वेच्छाचारिता के विरुद्ध उसकी खीझ और विषादपूर्ण मनोवेदना को प्रकट करता है। इसके साथ ही पुरुषत्व के मोह में भूले

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हुए पुरुषों के प्रति, इस वाक्य से, ध्रुवस्वामिनी के विद्रोह का स्वर भी फूट रहा है।

रामगुप्त को ध्रुवस्वामिनी ने वरा नहीं था। वह मद्यप, क्लीव और नपुंसक रामगुप्त महज इसलिए उस वीर रमणी का पति हो गया था क्योंकि वह चन्द्रगुप्त का बड़ा भाई था और परम्परानुसार राज्य की निधि पर पहले प्रथम संतान का ही अधिकार होता था। ध्रुवस्वामिनी उपहार में दी गयी वस्तु थी। अतः राज्य के साथ ही उस उपहार की वस्तु पर भी रामगुप्त का अधिकार हो गया। पर रामगुप्त को ध्रुवस्वामिनी से मिलने और दो टूक प्यार भरी बातें करने का अवकाश कहाँ था, जिसके लिए नारी-हृदय पिपासित रहता है। वह तो हिजरों, बौनों और कूबड़ों के नृत्य में डूबा रहता था और मदिरोन्मत्त हो झूमता फिरता था। किन्तु नारी प्राणों की अंजलि में भर कर अपने प्यार का प्रसून तो किसी पौरुष के देवता को ही चढ़ाती है, क्लीव और नपुंसकों को नहीं, चाहे वह सम्राट् ही क्यों न हो! इसी से ध्रुवस्वामिनी भी पौरुष की प्रतिमूर्त्ति, निरभ्र प्राची के बाल अरुण कुमार चन्द्रगुप्त को अपना अनुराग देती है।

रामगुप्त को इसकी खबर खड्गधारिणी (दासी) से मिलती है। उसी समय शकराज का प्रस्ताव ले कर खिङ्गल आता है। वह प्रस्ताव अमात्य शिखरस्वामी रामगुप्त से कहते हैं और उसे मान लेने की राय देते हैं। वह प्रस्ताव क्या था, सारी मान-मर्यादा, इज्जत, प्रतिष्ठा को धूल की तरह टोकड़ी में भर कर शकराज के हाथों लुटा देना था। पर क्लीव रामगुप्त को तो एक साथ ही भीतर और बाहर के शत्रु को परास्त करना था। वह तैयार हो गया।

बेचारी ध्रुवस्वामिनी अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए अपने पति के सम्मुख झुकती भी है, हजार मिन्नतें करती है, लाख अनुनये-विनय करती है, यहाँ तक कि उसके विलास की सहचरी होने तक को भी तैयार होती है, पर सब व्यर्थ! रामगुप्त उसे सोने की कटार मानता है जिसे कोई अपने हृदय में डुबा नहीं सकता।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और तब ध्रुवस्वामिनी के विद्रोह का स्वर फूट पड़ता है। ध्रुवस्वामिनी जो अब तक अनुनय-विनय करती हुई अबला-सी आँखों में पानी भर कर रो-पीट रही थी अब साक्षात महाकाली और चण्डी का रूप धारण कर अपने आत्म-सम्मान के लिए सन्नद्ध हो जाती है। वह नागिन की तरह फूत्कार करती हुई कह उठती है—"ओह, तो मेरा कोई रक्षक नहीं? नहीं, मैं अपनी रक्षा स्वयं करूँगी! मैं उपहार में देने की वस्तु, शीतल मणि नहीं हूँ। मुझ में रक्त-सी तरल लालिमा है। मेरा हृदय उष्ण है और उसमें आत्म-सम्मान की ज्योति है। उसकी रक्षा मैं ही करूँगी।"

अपनी लुटती हुई लाज की रक्षा में असमर्थ रामगुप्त को फटकारती हुई वह यहाँ तक कहती है कि—"पुरुषों ने स्त्रियों को अपनी पशु-सम्पत्ति समझ कर उन पर अत्याचार करने का अभ्यास बना लिया है, वह मेरे साथ नहीं चल सकता। यदि तुम मेरी रक्षा नहीं कर सकते, अपने कुल की मर्यादा, नारी का गौरव, नहीं बचा सकते, तो मुझे बेंच भी नहीं सकते हो।" वह 'उपहार में देने की वस्तु, शीतल मणि' नहीं है कि नृशंस पुरुष उस पर मन चाहा अधिकार जमा ले। वह अधिकार या शिकार है तथा पुरुष अधिकारी या शिकारी, यह उसे कभी मान्य नहीं।

ध्रुवस्वामिनी हर प्रकार के अत्याचार और अन्याय का विरोध करती है। उसका व्यक्तित्व बड़ा ही दृढ़ और सशक्त है। जब रामगुप्त चन्द्रगुप्त को बन्दी बना लेता है तो वह खुले शब्दों में चन्द्रगुप्त से कहती है—"झटक दो इन लौह शृंखलाओं को, यह मिथ्या ढोंग कोई नहीं सह सकेगा।"

वह पुरुष-नारी के वैवाहिक सम्बन्ध में धर्मशास्त्र के अनुचित टाँग अड़ाने को बर्दाश्त नहीं कर सकती। वह स्वयं अपने उस राक्षसी विवाह का विरोध करती है जिसमें द्राक्षासव की डुबकियाँ लगाता हुआ क्लीव रामगुप्त ने उसका पाणिग्रहण किया था। नारियों के सम्बन्ध में उसकी धारणा है कि—"पराधीनता की एक परम्परा-सी उनकी नस-नस में, उनकी चेतना में न जाने किस युग से घुस गयी है"।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वह कर्मकाण्ड और धर्मशास्त्र के खोखले स्वरूप का विरोध करती हुई पुरोहितजी से कहती है कि—"आप, आप का कर्मकाण्ड और आप के शास्त्र, क्या सत्य हैं जो सदैव रक्षणीया स्त्री की यह दुर्दशा हो रही है।"

किन्तु ध्रुवस्वामिनी की यह कठोरता वास्तविक नहीं है। वह अन्ततः एक नारी है। नारी कोमलता की प्रतीक होती है।

ध्रुवस्वामिनी को अपने आत्म-सम्मान के रक्षार्थ और अनुचित विवाह से सम्बन्ध-विच्छेद के लिए ही कठोर होना पड़ा है। किन्तु अगर वह समय पर वज्र के समान कठोर हो सकती है तो कुसुम के समान कोमल भी।

ध्रुवस्वामिनी के हृदय में भी प्रेम की पुलक है और आत्म-समर्पण की भावना। रामगुप्त से वह भले घृणा करती हो पर चन्द्रगुप्त से उसे कम अनुराग नहीं है। उसकी सरल स्निग्ध और सुन्दर मूर्त्ति के स्मरण मात्र से ही वह आत्म विभोर हो उठती है।

उसमें क्षमा और दया के भाव भी वर्त्तमान हैं। जब कोमा ध्रुवस्वामिनी से शकराज के शव की याचना करती है तो वह सहर्ष शव तो दे ही देती है, साथ ही उसके शीतल जीवन के लिए उसे धन्यवाद भी देती है।

शकराज की मृत्यु के उपरान्त जब मन्दाकिनी उसे बधाई देने के क्रम में भूल से भाभी कह कर फिर महादेवी कह कर सम्बोधित करती है तो ध्रुव-स्वामिनी का नारीत्व साकार हो उठता है। नारी हमेशा पद के गौरवपूर्ण आवरण में लिपटी नहीं रह सकती। वह कहती है—"मन्दा! भूल से ही तुमने आज एक प्यारी बात कह दी, उसे क्यों लौटाना चाहती हो?"

इस प्रकार हम देखते हैं कि ध्रुवस्वामिनी में जितनी ही दृढ़ता है, पुरुषों की उच्छृंखलता के प्रति जितनी ही घृणा है, अनुचित वैवाहिक सम्बन्ध के प्रति जितना ही सशक्त विरोध का स्वर है, आत्म-सम्मान के रक्षार्थ जितना ही प्रबल आत्म-बल है उतना ही उसमें नारीत्व है, कोमलता का भाव है, प्रेम की प्यास है और वीरता तथा पौरुष के प्रति सहज श्रद्धा है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निश्चय ही आधुनिक नारी जाति के लिए ध्रुवस्वामिनी प्रेरणा की पावन प्रतिमा और शक्ति तथा आत्म-बल की जाग्रत ज्योति-शिखा सिद्ध हो सकती है।

कोमा

कोमा प्रसादजी की भावुक एवं कोमल कला-दृष्टि की सृष्टि है। वह अत्यंत ही अनुभूतिमयी और प्रणयाकुल है।

कोमा भारतीय नारी के उस रूप का प्रतिनिधित्व करती है जिसमें प्रेम के नाम पर उत्सर्ग का भाव रहता है, और प्रीति के नाम पर जिसमें त्याग भरा रहता है। कोमा के हृदय के प्याले में प्रेम का तरल रस उफनता है। प्रणय, प्रेम का तीव्र आलोक उसकी आँखों में प्रकाश पुञ्ज उड़ेल देता है। इसी से वह पौरुष की दीप्त प्रतिमा शकराज को जब अपने प्राणों का प्रीति-पुष्प भेंट करती है तो उसे कभी लौटाती नहीं। भले ही उसकी ओर से उसे उपेक्षा, अपमान और तिरस्कार ही क्यों न मिले!

वह जानती है कि प्रेम चाहे पागलपन हो, भूल हो या उसमें दुःख ही मिले किन्तु "प्रेम करने की एक ऋतु होती है। उसमें चूकना, उसमें सोच-समझ कर चलना, दोनों बराबर है।" इसी से वह यौवन की चंचल छाया के नीचे बैठ कर एक घूँट प्रेम का रस पीना चाहती है क्योंकि उसकी जीवन वंशी के छिद्रों से प्रेम का स्वर ही गूँज रहा है।

वह बेचारी प्रेम-पुजारिन है। शकराज को युद्ध-विग्रह में लगा हुआ देख कर विकल हो उठती है और मकड़ी की तरह लटकने के लिए अपने आप समस्याओं का जाल बुनने का विरोध करती है। वह उसकी दुश्चिन्ताओं में भी अपना भाग लेना चाहती है।

किन्तु शकराज उस निश्छल प्रीति-राधिका के मंजुल भावों की उपेक्षा करता है और उसके साथ ही उसके पिता-तुल्य आचार्य मिहिरदेव का भी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अपमान कर बैठता है। आचार्य उसे शकराज का साथ छोड़ देने कहते हैं। पर नारी का प्रेम ऐसा नहीं होता कि उसे वह एक झटके में तोड़ दे। वह संकोच और करुणा से भर कर कहती है—"तोड़ डालूँ पिताजी! मैंने जिसे अपने आँसुओं से सींचा, वही दुलार भरी वल्लरी, मेरे आँख बन्द कर चलने में मेरे ही पैरों से उलझ गई है। दे दूँ एक झटका—उसकी हरी-हरी पत्तियाँ कुचल जायँ और वह छिन्न हो कर धूल में लोटने लगे? न, ऐसी कठोर आज्ञा न दो!"

प्रेम अन्धा होता है। इसी से प्रायः ही उसमें भूल हो जाती है और प्रेमी या प्रेमिका को ठोकरें खानी पड़ती हैं। कोमा से भी प्रेम में भूल हो गयी। वह दर्प से दीप्त शकराज की महत्त्वमयी पुरुष मूर्त्ति की पुजारिन थी। अब वह प्रेम की पीड़ा और कसक को भूल जाने की चेष्टा ही करेगी।

मगर प्रेम अगर सच्चा प्रेम है तो उसका बन्धन सहज ही एक झटके में टूटता नहीं है—

इश्क पर जोर नहीं है ये वो आतश गालिब,
कि लगाये न लगे और बुझाये न बने।

सो दूर जा कर भी कोमा शकराज को, अपने भावी पति को, भूल नहीं सकी। चन्द्रगुप्त द्वारा वध किये जाने पर वह ध्रुवस्वामिनी से उसका शव माँगती है। वह स्वीकारती है कि उसने प्रेम किया था और प्रेम में उसे वही मिला जो स्त्रियों को प्रायः मिला करता है—निराशा! निष्पीड़न! और उपहास!! किन्तु वह यह भी जानती है कि सब के जीवन में एक बार प्रेम की दीपावली जलती है और वह आलोक का महोत्सव आता है जिसमें हृदय हृदय को पहचानने का प्रयत्न करता है, उदार बनता है और सर्वस्व दान करने का उत्साह रखता है।

इसी से कोमा जैसी अनुरागमयी और प्रीति की मोम-प्रतिमा को देख कर मन्दाकिनी को कहना पड़ा—"कितनी असहाय दशा है। अपने निर्बल और अवलम्ब खोजने वाले हाथों से यह पुरुषों के चरणों को पकड़ती है और वह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सदैव ही इनको तिरस्कार, घृणा और दुर्दशा की भिक्षा से उपकृत करता है। तब भी यह बावली मानती हैं।"

सचमुच कोमा वह नारी है जिसे अनुराग के प्रतिदान में आग और प्यार के बदले अंगार मिलता है तब भी वह प्रणय के पंथ में त्याग की माला पहन कर सतत चलती है और प्रीति के मंदिर में उत्सर्ग की आरती बन कर स्वयं जलती है।

किन्तु कोमा भोरी प्रीति की बावली पुतली ही नहीं है। उसमें भावनाओं के साथ विचार और विवेक का तथा अनुभूति के साथ दर्शन का भी समन्वय हुआ है। वह शकराज को सदैव सदुपदेश या सद्विचार देती है। वह उसे अपने से महान् के सम्मुख थोड़ा-सा विनीत बन कर चलने की राय देती है। वह मानव-शक्ति से बढ़ कर एक महाशक्ति में भी विश्वास करती है और शकराज से कहती है कि—"अभावमयी लघुता में मनुष्य अपने को महत्वपूर्ण दिखाने का अभिनय न करे तो क्या अच्छा नहीं है?"

कोमा शकराज द्वारा राजनीति के प्रतिशोध में, अपने गर्व की तृप्ति के लिए, उपहार में मँगाई गयी ध्रुवस्वामिनी के साथ अनर्थ करने का भी तीव्र विरोध करती है और कहती है—"आज तुम एक स्त्री को अपने पति से विच्छिन्न करा कर अपने गर्व की तृप्ति के लिए कैसा अनर्थ कर रहे हो? राजनीति का प्रतिशोध, क्या एक नारी को कुचले बिना नहीं हो सकता?"

कोमा युद्ध और रक्तपात से घृणा करती है। वह कोमल, निरीह लताओं को मुरझाई देख कर व्यथित हो जाती है। वह शांति की पोषिका और वास्तविक जीवन की उपासिका है। शकराज को युद्ध विग्रह में रत देख कर सोचती है—"सब जैसे रक्त के प्यासे! प्राण लेने और देने में पागल! वसन्त का उदास और अलस पवन आता है, चला जाता है। कोई उसे स्पर्श से परिचित नहीं। ऐसा तो वास्तविक जीवन नहीं है?"

निश्चय ही कोमा प्रसाद की भावुकता, विचारशीलता और प्रेमाकुलता की त्रिवेणी पर गढ़ी गयी वह प्रणय-प्रतिमा है जिसमें यौवन की मादकता है,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वसन्त के अलस पवन का पुलक है, प्रीति का उफनता हुआ आसव है और त्याग तथा विवेक के फूलों में बँधी हुई जिसकी उद्दाम जीवन—कामनाओं की धारा है।

मन्दाकिनी

मन्दाकिनी का चरित्र आरम्भ से नाटक के अंत तक बड़ा ही महत्त्वपूर्ण एवं गरिमामय रहा है। प्रसादजी ने उसके चरित्र में नारी के विकसित रूप का समावेश किया है। उसमें न्याय, बुद्धि, निर्भयता, शक्ति का वेग, नारी मर्यादा की भावना एवं कार्यपटुता कूट-कूट कर भरी हुई है। वह स्वार्थहीन भी है।

मंदाकिनी ध्रुवस्वामिनी की सहचरी है और कभी-कभी ध्रुवस्वामिनी को भाभी भी कह उठती है। उसे अन्याय और मर्यादाहीनता कतई पसन्द नहीं। कर्त्तव्य, परोपकार, सत्य और न्याय की दीप-शिखा उसके हृदय-मन्दिर में सदैव जलती रहती है। इसी से जब शकराज के प्रस्ताव को मान कर रामगुप्त ध्रुवस्वामिनी को शक-शिविर में भेजने का निर्णय करता है तो वह विक्षुब्ध हो उठती है और कहती है—"मूर्खों ने स्वार्थ के लिए साम्राज्य के गौरव का सर्वनाश करने का निश्चय कर लिया है। सच है, वीरता जब भागती है, तब उसके पैरों से राजनीतिक छल-छन्द की धूल उड़ती है।" गुप्तवंश के गौरव और मर्यादा के इस प्रकार पतन होने के कारण वह विस्मृति में अपने को छिपा लेना चाहती है। पर फिर भी को, हृदय को कठोर कर के अपने कर्त्तव्य पालन के लिए वहाँ रुकती है, और इसी कारण वह 'न्याय का दुर्बल पक्ष' भी ग्रहण करने को तत्पर होती है।

उसे गुप्त वंश के गौरव चन्द्रगुप्त के लिए स्नेह है किन्तु रामगुप्त से घोर घृणा। उसे वह कपटाचारी तक कहती है, तथा शकराज के अपमानपूर्ण संधि-सन्देश को मानने के कारण धिक्कारती है तथा स्वदेश और कुल मर्यादा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

की सुरक्षा के लिए ललकारती भी है। वह ओज भरी वाणी में उससे कहती है—"राजा अपने राष्ट्र की रक्षा करने में असमर्थ हो तो भी उस राजा की रक्षा होनी ही चाहिये। अमात्य, यह कैसी विवशता है..... एक बार अन्तिम बल से परीक्षा करके देखो। बचोगे तो राष्ट्र और सम्मान भी बचेगा, नहीं तो सर्वनाश।" कुल गौरव की रक्षा के लिए कितनी दीप्त वाणी है यह !

यह उत्साह वह केवल रामगुप्त को ही दे कर बैठ नहीं जाती। जब चन्द्रगुप्त ध्रुवस्वामिनी के साथ नारी वेश में शक-शिविर में जाने को उद्यत होता है तो सामन्त कुमारों के आगे-आगे वह उत्साहपूर्ण अभियान गीत भी गाती है और चन्द्रगुप्त को सर्वदा संकटपूर्ण पथ पर भी अग्रसर होते रहने की प्रेरणा देती है। वह गाती है—

"पैरों के नीचे जलधर हों बिजली से उनका खेल चले

× × × × ×

तब भी गिरि पथ का अथक पथिक ऊपर ऊँचे सब झेल चले।"

निर्भीकता तो मन्दाकिनी की एक अपूर्व विशेषता है। न्यायपूर्ण बातें वह निष्पक्ष भाव से किसी को भी कहने में हिचकती नहीं। जब पुरोहित चन्द्रगुप्त को राजा और ध्रुवस्वामिनी को उसकी पत्नी होना शास्त्र सम्मत सिद्ध करते हैं तो मन्दा भी गुप्तकुल की वधू को खींच कर सामने ले आती है। रामगुप्त उस पर भय प्रकट करता है तो मन्दा कहती है—"राजा का भय, मंदा का गला नहीं घोट सकता। तुम लोगों को यदि कुछ भी बुद्धि होती तो इस अपनी कुल मर्यादा नारी को शत्रु के दुर्ग में यों न भेजते। भगवान ने स्त्रियों को उत्पन्न कर के ही अधिकारों से वंचित नहीं किया है, किन्तु तुम लोगों की दस्युवृत्ति ने उसे लूटा है।"

कोमा नारी के अधिकारों के लिए भी लड़ती है। ध्रुवस्वामिनी और चन्द्रगुप्त के मधुर वैवाहिक सम्बन्ध स्थिर करने में मन्दाकिनी का प्रयास कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। वह पुरोहित से ध्रुवस्वामिनी के लिए लड़ती है। धर्म के नाम पर स्त्री की आज्ञाकारिता की पैशाचिक परीक्षा से ऊबी और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

राक्षसी-सी साँस लेती हुई ध्रुवस्वामिनी को देख कर वह पुरोहित से कह उठती है—"जिन स्त्रियों को धर्म-बन्धन में बाँध कर, उनकी सम्मति के बिना आप उनका सब अधिकार छीन लेते हैं, तब क्या धर्म के पास कोई प्रतिकार—कोई संरक्षण नहीं रख छोड़ते, जिससे वे स्त्रियाँ अपनी आपत्ति में अवलम्ब माँग सकें?"

वह यह जान कर कि ध्रुवस्वामिनी निश्चय ही कुमार चन्द्रगुप्त की अनुरागिनी है, चन्द्रगुप्त को कर्त्तव्य-परायणता का बोध कराती हुई कहती है—"हृदय में नैतिक साहस, वास्तविक प्रेरणा और पौरुष की पुकार एकत्र कर के सोचिये तो कुमार! कि अब आप को क्या करना चाहिये" और इसीलिए निर्भयता पूर्वक वह परिषद् से यह भी पूछती है कि—"यह साम्राज्य किसका है? आर्य समुद्रगुप्त ने किसे युवराज बनाया था? चन्द्रगुप्त को या इस क्लीव रामगुप्त को?"……और यह ध्रुवस्वामिनी! जिसे कुछ दिनों तक तुम लोगों ने महादेवी कह कर सम्बोधित किया है, वह क्या है? कौन है? और उसका कैसा अस्तित्व है? कहीं धर्मशास्त्र हो तो उसका मुँह खुलना चाहिये।"

इस निर्भीकता, न्यायप्रियता और कर्त्तव्य परायणता के अतिरिक्त उसमें नारी सुलभ सहज करुणा भी कम नहीं है। शकराज से अपमानित और उपेक्षिता कोमा द्वारा शकराज की शव के लिए ध्रुवस्वामिनी से प्रार्थना किये जाने पर वह द्रवित हो उठती है। नारी जाति की अपने ही प्रिय पात्र द्वारा की गयी दयनीय और असहाय दशा देख कर वह सकरुण वाणी में कह उठती है—"स्त्रियों के इस बलिदान का भी कोई मूल्य नहीं। कितनी असहाय दशा है। अपने निर्बल और असहाय हाथों से यह पुरुषों के चरणों को पकड़ती है और वह सदैव ही इनको तिरस्कार, घृणा और दुर्दशा की भिक्षा से उपकृत करता है।"

निश्चय ही मन्दाकिनी प्रसाद की उन नारी सृष्टियों में एक है जो युग-युग से अभिशप्त, पीड़ित, प्रताड़ित और उपेक्षित नारी समुदाय की, विद्रोह की

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वाणी बुलन्द करती है और न्याय, सत्य तथा परोपकार के लिए ही अपना करुणापूर्ण जीवन धारण किये रहती है।

ध्रुवस्वामिनी और कोमा का तुलनात्मक अध्ययन

ध्रुवस्वामिनी और कोमा दोनों एक ही नारी जाति की होती हुई भी नारी के दो विभिन्न स्वरूपों की दिव्य झाँकी उपस्थित करती हैं। ये दोनों रमणियाँ पुरुषों के द्वारा अपमानित, तिरस्कृत और पदमर्दित हैं। प्रेम की प्यास और प्रीति की आकुलता से दोनों के हृदय भरे हैं। दोनों को अपने प्रेम में असफलता ही मिली है। किन्तु दोनों की परिस्थितियाँ भिन्न हैं।

ध्रुवस्वामिनी का व्याह रामगुप्त जैसे मद्यप, क्लीव और कापुरुष से हुआ है। भाग्य की विडम्बना यह है कि यद्यपि वह है चन्द्रगुप्त की वाग्दत्ता पत्नी तथापि उसका परिणय बंधन रामगुप्त से होता है जिससे उसे प्रेम पूर्ण सम्भाषण का क्षणिक अवसर भी प्राप्त नहीं होता। सम्भाषण तब होता है जब रामगुप्त उसे शकराज के शिविर में जाने का आदेश देता है। नारी होने के कारण उसे पति के प्रेम की उद्दाम प्यास है। पर परिणाम कितना भयंकर है! इसी से आरम्भ से ही हम उसे पुरुषों की कठोरता और नारियों की विवशता पर व्यंग्य करते, भीषण अट्टहास करते पाते हैं। इसी से वह 'निरभ्र प्राची के बाल अरुण' की ओर आकृष्ट होती है। वह रामगुप्त के विलास की सहचरी भी नहीं हो सकी और रामगुप्त के निश्चय पर विद्रोह की अग्नि उसके मन में प्रज्वलित हो जाती है तथा वह सिंहनी-सी दहाड़ती हुई रामगुप्त को फटकारती है। चन्द्रगुप्त के साहचर्य से वह शकराज पर विजय पाती है और अंत में उसकी पत्नी होती है।

इसके विपरीत कोमा एक मृदुल मसृण नारी है। उसका कुसुम-कोमल स्वभाव उसके जीवन की अमूल्य निधि है। वह प्रेम और निश्छल प्रेम की प्रतिमा मात्र है। इसी से उसका जीवन काव्यमय भावना पूर्ण और शुद्ध तथा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रक्तपात से विरत है। पुष्प-पौधों तथा पशु-पक्षियों को देखते ही वह भाव-विह्वल हो जाती है। नारी पौरुष की पुजारिनी होती है। वह नर-तरु से अपनी भुज-लता बिना सोचे समझे फँसा कर झोंके से झूला खाती रहती है। यही कारण है कि उसे आँसू से भींगे आँचल पर मन की अमूल्य निधि रख कर मुस्कुराते हुए पुरुषों से प्रेम का संधि-पत्र लिखना पड़ता है। कोमा भी वैसा ही करती है। वह शकराज के पौरुष पर आकृष्ट होती है और अपने मन का सब कुछ उसे सौंप देती है। पर यह सम्मिलन तरु-लता का सम्मिलन था। शकराज उसे अपना अधिकार समझता है। दो प्रेम पूर्ण आत्माओं में स्वर्ग की झलक उसे नहीं मिलती है। शक्ति के मद में और पौरुष के दर्प में वह ध्रुवस्वामिनी से विलास करने को तत्पर होता है। कोमा कान्तासम्मित उपदेश दे कर उसे सुमार्ग पर लाना चाहती है। पर साहस के साथ पुरुषों की उद्दाम विलासिता, तथा भयंकर उच्छृंखलता का विरोध करने की उसमें शक्ति कहाँ? वह प्रतिकार में चुपचाप वहाँ से चली जाती है, उस दुलार भरी वल्लरी को तोड़ कर जिसे उसने अपने आँसुओं से सींचा था। ध्रुवस्वामिनी अपने प्रेम का ऐसा भीषण परिहास देख ही नहीं सकती थी। देखी भी नहीं। चन्द्रगुप्त का प्रेम प्राप्त करने के लिए वह तलवार की धार पर भी चलने में संकोच नहीं कर सकी। वह हर अन्याय का तीव्र विरोध करती है।

ध्रुवस्वामिनी नारी जागरण तथा वर्त्तमान नारी-चेतना के आन्दोलन की सशक्त नेत्री है। वह नारी के अधिकारों पर कुठाराघात देख नहीं सकती। वह पुरुषों के ऐसे हर कार्य पर वज्राघात करती है जिससे उसके अधिकारों का हनन होता हो। युद्ध-भूमि में जाने से वह भयभीत नहीं होती। प्रलय का परिहास वह विनोद की दृष्टि से देखना चाहती है। किन्तु कोमा युद्ध और रक्त-पिपासा से कोसों दूर रहने वाली नारी है। वह भारत की उस सनातन नारी की प्रीति-प्रतिमा है जो हँसते-हँसते प्रियतम के चरणों पर बलिदान हो सकती है, जिसके हृदय में आह तो उठती है पर ओठों पर फरियाद का एक शब्द नहीं होता, जिसके मन में व्यथा का वाष्प तो उठता है पर दृग-कोरों में

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आँसू का कण तक नहीं छलक पाता। वेदना की बदली में घिरी रहने पर भी जो ओठों पर मुस्कुराहट की दामिनी बिखेरती है—कोमा वैसी नारी है। कोमा की जीवन-लता भावुकता और दार्शनिकता की मंजुल मिट्टी पर फूली-फली है। ध्रुवस्वामिनी इसके ठीक विपरीत आँधी और तूफानों से खेलना चाहती है। वह रामगुप्त की क्लीवता, शिखर स्वामी की कूटनीतिज्ञता और पुरोहित की शास्त्र प्रियता पर विक्षुब्ध हो उठती है और समय पड़ने पर सब को फटकारती ही नहीं, धिक्कारती भी है। ध्रुवस्वामिनी में "युग-युग की पद-दलित नारी की विद्रोहात्मक प्रतिक्रिया अभिव्यक्त हुई है। 'कोमा' भारतीय नारी के उस सनातन रूप की प्रतिकृति है जो 'अवयव की कोमलता' ले कर जीवन में सबसे हारी रहती है और ध्रुवस्वामिनी उस पौरुष पूर्ण स्त्री की प्रतीक है जो अपनी कोमल काया के भीतर एक विराट् शक्ति का अनुभव करती है, जिसके समक्ष संसार की सभी शक्तियाँ प्रणत हो जाती हैं।"

कोमा का प्रेम प्रतिदान के अभाव में प्रतिक्रियात्मक विद्रोह नहीं करता। वह शकराज के द्वारा की गयी उपेक्षा के बावजूद भी उसकी लाश की याचना करने जाती है और अपना जीवन न्योछावर करती है। किन्तु ध्रुवस्वामिनी रामगुप्त से प्रेम नहीं पाने पर चन्द्रगुप्त को पा लेती है और रामगुप्त से सम्बन्ध विच्छेद कर चन्द्रगुप्त से परिणय सम्बन्ध स्थापित कर लेती है। दोनों के जीवन, प्रेम और क्रियाओं में ही मूलतः विभेद है।

वस्तुतः ध्रुवस्वामिनी और कोमा दोनों पृथक् रूप में अधूरी नारी हैं। एक कठोरता की मूर्त्ति है तो दूसरी कोमलता की काया। वर्त्तमान युग की नारी में दोनों का समन्वय होना आवश्यक है। आज ऐसी नारी की अपेक्षा है जो अपने में ध्रुवस्वामिनी और कोमा दोनों को पचा सके। इन दोनों के समन्वय से जिस नारी-प्रतिमा का निर्माण होता है, उसे ही पूर्ण नारी कहा जा सकता है। प्रसादजी इन नारी समुदाय के इन दो प्रतीकों के माध्यम से यह स्पष्ट दिखा देना चाहते हैं कि आज की नारी को न केवल मोम की मूर्त्ति होना चाहिये और न केवल पाषाण की प्रतिमा। कर्मठता और कोमलता के संगम पर ही सच्ची नारी का, पूर्ण नारी का निर्माण हो सकता है। नारी तभी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पूर्णता की पूर्णिमा बन सकती है जब उसमें ध्रुवस्वामिनी की भाँति सूर्य का तेज हो और कोमा की भाँति चन्द्र की शीतलता और स्निग्धता।

चन्द्रगुप्त

चन्द्रगुप्त ध्रुवस्वामिनी नाटक का नायक है। उसका चरित्र अत्यन्त भव्य, आदर्श और वीरतामय तथा त्यागमय है। उसमें वीरता, साहस, शक्ति और उदारता भी पराकाष्ठा पर हैं। नाटक का अंतिम फल भी उसे ही प्राप्त होता है। अतः, निस्सन्देह वह नाटक का नायक है। इसी से उसका चरित्र भी उज्ज्वल मणि की भाँति विलक्षण है।

सर्वप्रथम हम उसमें नारी-गौरव और कुल-गौरव की रक्षा का उदात्त भाव पाते हैं। जब क्लीव रामगुप्त ध्रुवस्वामिनी के सारे अनुनय-विनय को ठुकरा कर उसे शक-शिविर में जाने का आदेश दे ही देता है तो वह अपने आत्म-सम्मान की रक्षा में अपनी आत्म-हत्या करने को उतारू हो जाती है। तभी चन्द्रगुप्त वेग सहित आ कर उसे आत्म-हत्या करने से रोकता है। वह कहता है—"जीवन विश्व की सम्पत्ति है। प्रमाद से, क्षणिक आवेश से या दुःख की कठिनाइयों से उसे नष्ट करना ठीक तो नहीं।" वह ध्रुवस्वामिनी को शक-शिविर में जाते देखना किसी कीमत पर भी नहीं स्वीकार कर सकता। इसी से अपने प्राणों की बाजी पर भी वह शक-शिविर में जाता है। वह ध्रुवस्वामिनी के साथ शक-शिविर में जाने को सहमत नहीं। किन्तु जब वह जाती ही है तो वह स्वयं ध्रुवस्वामिनी का रूप धारण कर अकेले शकराज का वध कर डालता है। रामगुप्त के निर्णय को सुन कर उसने पहले ही आवेश भरे शब्दों में कहा था—"यह नहीं हो सकता। महादेवि! जिस मर्यादा के लिए—जिस महत्त्व को स्थिर रखने के लिए, मैंने राजदण्ड ग्रहण न करके अपना मिला हुआ अधिकार छोड़ दिया;

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उसका यह अपमान! मेरे जीवित रहते आर्य समुद्रगुप्त के स्वर्गीय गर्व को इस तरह पद दलित न होना पड़ेगा।"

इसी प्रकार जब रामगुप्त ध्रुवस्वामिनी को बंदी बनाने का आदेश सैनिकों को देता है तब चन्द्रगुप्त अपनी लौह-शृंखला तोड़ डालता है और फटकारता हुआ शिखर स्वामी से कहता है कि "तुम यह अच्छी तरह जानते हो कि मैं ही उनके (समुद्रगुप्त) द्वारा निर्वाचित युवराज भी हूँ। तुम्हारी नीचता अब असह्य है! तुम अपने राजा को ले कर इस दुर्ग से सकुशल बाहर चले जाओ।"

चन्द्रगुप्त में वीरता भी कूट-कूट कर भरी हुई है और उस वीरता का विनय तथा शील के संगम पर ही निर्माण हुआ है। वह ध्रुवस्वामिनी के साथ अकेले शक-दुर्ग में प्रविष्ट हो कर शकराज से द्वन्द्व-युद्ध करता है और कहता है—"मैं हूँ चन्द्रगुप्त, तुम्हारा काल! मैं अकेला आया हूँ तुम्हारी वीरता की परीक्षा लेने के लिए।" उस युद्ध में उसे वह परास्त कर देता है। किन्तु वही चन्द्रगुप्त जब रामगुप्त द्वारा बंदी बना लिया जाता है तो शक्ति रहते हुए भी विनय-वश वह उसका प्रतिकार नहीं करता। इतना होने पर भी उसके विनय में कायरता नहीं है। जब ध्रुवस्वामिनी को बंदी बनाने का आदेश रामगुप्त देता है तो वह लौह-शृंखलाओं को तोड़ता हुआ कह उठता है—"नहीं मैं अपनी आँखों से अपना वैभव और अधिकार दूसरों को अन्याय से छीनते देख रहा हूँ और मेरी वाग्दत्ता पत्नी मेरे ही अनुत्साह से आज मेरी नहीं रही।...............यह कैसी विडम्बना है! विनय के आवरण में मेरी कायरता अपने को कब तक छिपा सकेगी?" झूठी विनय उसे पसन्द नहीं। ध्रुवस्वामिनी को शक-शिविर में भेजे जाने की व्यवस्था देने वाले शिखर स्वामी को ललकारता हुआ वह कहता है—"अमात्य, तभी तो तुमने व्यवस्था दी है कि महादेवी को दे कर भी सन्धि की जाय। क्यों यही तो विनय की पराकाष्ठा है। ऐसा विनय प्रवंचकों का आवरण है जिसमें शील न हो।"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चन्द्रगुप्त में गंभीरता और शान्तिप्रियता भी है। द्वन्द्वयुद्ध में शकराज का वध कर देने के बाद वह किसी राजनीतिक उलझन में नहीं पड़ता। वह अपने अधिकार की माँग भी नहीं करता। अपना कर्त्तव्य पूर्ण कर लेने के पश्चात् वह वहाँ रहना भी नहीं चाहता। मंदाकिनी द्वारा विश्राम करने के अनुरोध पर वह कहता है—"विश्राम! मुझे कहाँ विश्राम? मैं अभी यहाँ से प्रस्थान करने वाला हूँ। मेरा कर्त्तव्य पूर्ण हो चुका। अब यहाँ मेरा ठहरना अच्छा नहीं।" वह स्पष्ट हो कर कहता है कि "राजाधिराज का सामना होते ही क्या हो जायगा—मैं नहीं कह सकता। क्योंकि अब यह राजनीतिक छल-प्रपंच में नहीं सह सकता।" चन्द्रगुप्त में स्वाभाविक संकोच भी है। इसी संकोच के कारण ही तो वह कहता है कि "विधान की स्याही का एक बिन्दु गिर कर भाग्य-लिपि पर कालिमा चढ़ा देता है। मैं आज यह स्वीकार करने में भी संकुचित हो रहा हूँ कि ध्रुव देवी मेरी है।"

चन्द्रगुप्त एक प्रेमी भी है। ध्रुवस्वामिनी से उसे सहज प्रेम है। उसने चन्द्रगुप्त के हृदय के अन्धकार में प्रथम किरण-सी आ कर अज्ञात भाव से अपना मधुर आलोक ढाल दिया था। इसी से चन्द्रगुप्त उसे अपने अन्तस्तल से प्यार करता है। स्वभावतया ध्रुवस्वामिनी भी उसे प्यार करती है। चन्द्रगुप्त ध्रुवस्वामिनी की, शकराज के नृशंस चंगुल से, मुक्ति के लिए अपने प्राणों की बाजी लगाता है। अतः, ध्रुवस्वामिनी भी उसे अन्त तक अपने प्राणों के अनुराग से पूजती है तथा अन्त में उससे परिणय सम्बन्ध भी स्थापित करती है। समान स्थिति में ही प्रीति होती है। दोनों जीवन के आरम्भ से ही समान स्थिति में रहे। बंदी बने। विद्रोह किया। शक-शिविर में गये। और अंत में एक हुए। चन्द्रगुप्त खुले शब्दों में ध्रुवस्वामिनी के सम्बन्ध में यह स्वीकार करता है कि "हाँ, वह मेरी है, उसे मैंने आरम्भ से ही अपनी सम्पूर्ण भावना से प्यार किया है। मेरे हृदय के गहन अन्तस्तल से निकली हुई यह मूक स्वीकृति आज बोल रही है।" उसे वह अपनी वाग्दत्ता पत्नी भी कहता है। और अन्त में वह उसे प्राप्त

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करने के लिए अपनी हथकड़ी भी तोड़ डालता है और उसे प्राप्त कर ही लेता है।

चन्द्रगुप्त में शक्ति के साथ ही सौन्दर्य भी कम नहीं है। हिजड़ा उसे स्पष्ट ही कहती है कि 'कुमार! मैं शपथ खा कर कह सकती हूँ कि यदि मैं अपने हाथों से सजा दूँ तो आप को देख कर महादेवी का भ्रम हो जाय। स्वयं शकराज को भी चन्द्रगुप्त को नारी रूप में देख कर यह निर्णय करना कठिन हो गया था कि कौन वास्तविक ध्रुवस्वामिनी है। इस प्रकार चन्द्रगुप्त के चरित्र में शक्ति और सौन्दर्य का जो मणि-कांचन संयोग हुआ है वह उसके व्यक्तित्व को विलक्षण और अपूर्व बना देता है।

चन्द्रगुप्त के गुणों यथा—वीरता, कर्मठता, कुलमर्यादा का भाव इत्यादि ने ही मिल कर परिषद् को यह निर्णय करने के लिए विवश किये कि चन्द्रगुप्त ही वास्तविक सम्राट् हैं। इसी कारण नाटक के अंत में हम चन्द्रगुप्त को सम्राट् और ध्रुवस्वामिनी को राजमहिषी के रूप में देखते हैं।

रामगुप्त

रामगुप्त का ध्रुवस्वामिनी नाटक में एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। वह नाटक का खलनायक है। अमात्य शिखर स्वामी की राजनीति और छल-छद्म से वह गुप्त राज्य का अधिकारी हो जाता है तथा चन्द्रगुप्त की वाग्दत्ता पत्नी से भी परिणय कर बैठता है। किन्तु, स्वभाव से क्रूर, मन से दुर्बल और बुद्धि से हीन महाविलासी तथा क्लीव है वह। उसके व्यक्तित्व में पौरुष की दीप्ति नहीं है और भुजाओं में बल नहीं है।

सर्वप्रथम हम देखते हैं कि रामगुप्त एक कायर, क्लीव, नपुंसक तथा डरपोक है। वह सदैव विलास में डूबा और मदिरा में बेसुध रहा करता है। उसके चारों ओर हिजड़ों, कुबड़ों और बौनों का नृत्य होता है जिसमें वह खोया-सा रहता है। शकराज जब उसके शिविर को घेर लेता है और संधि-प्रस्ताव

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

में ध्रुवस्वामिनी के अतिरिक्त अन्य सामन्त-पत्नियों की माँग करता है तो न उसे चिन्ता होती है, न क्षोभ और न क्रोध ही। उसे चिन्ता है तो इस बात की कि जगत् की अनुपम सुन्दरी उससे प्रेम नहीं करती। और इसीलिए वह ध्रुवस्वामिनी के लाख अनुनय-विनय के बावजूद, उसका शक-शिविर में जाना स्वीकार कर लेता है। यह उसकी पुरुषार्थहीनता का ज्वलंत उदाहरण है। वह ध्रुवस्वामिनी को आत्म-हत्या करते देख रुकता या रोकता नहीं बल्कि कायर की तरह भागता हुआ निकल भी जाता है।

उसे अपनी कुल-मर्यादा की रक्षा का किंचित् भी ख्याल नहीं है। वह अपनी पत्नी ध्रुवस्वामिनी से कभी प्रेमपूर्ण सम्भाषण नहीं करता। सम्भाषण तब करता है जब उसे वह शक-शिविर में भेजना चाहता है। ध्रुवस्वामिनी जब इसका विरोध करती हुई उससे कहती है कि "मेरा स्त्रीत्व क्या इतने का भी अधिकारी नहीं कि अपने को स्वामी समझने वाला पुरुष उसके लिए प्राणों का प्रण लगा सके।" तो रामगुप्त उत्तर देता है—"तुम सुन्दर हो, ओह कितनी सुन्दर, किन्तु सोने की कटार पर मुग्ध हो कर उसे कोई अपने हृदय में डुबा नहीं सकता। तुम्हारी सुन्दरता--तुम्हारा नारीत्व—अमूल्य हो सकता है। फिर भी अपने लिये मैं स्वयं कितना आवश्यक हूँ, कदाचित् तुम यह नहीं जानती हो।" जब ध्रुवस्वामिनी उसके पैरों को पकड़ कर रक्षा करने का अनुरोध करती है और उसके विलास की सहचरी होने को भी तैयार होती है तो वह घबराता हुआ कहता है—"तुम, मेरी रानी? नहीं, नहीं! जाओ तुमको जाना पड़ेगा। तुम उपहार की वस्तु हो। आज मैं तुम्हें किसी दूसरे को देना चाहता हूँ। इसमें तुम्हें क्यों आपत्ति हो?" अंत में उसे शक-शिविर जाना ही पड़ा।

इतना ही नहीं, रामगुप्त को अपने वीर पराक्रमी भाई चन्द्रगुप्त और पत्नी ध्रुवस्वामिनी को बंदी बनाने में भी तनिक संकोच नहीं होता। बल्कि वह चन्द्रगुप्त पर कटार का वार करने को भी तत्पर हो जाता है। यह उसकी क्षुद्रता, कृतघ्नता तथा कुल-गौरव-हीनता का स्पष्ट परिचायक है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रामगुप्त एक मद्यप और विलासी तथा क्रूर, कपटी व्यक्ति है। शक शिविर में भेजने का प्रस्ताव सुन जब ध्रुवस्वामिनी उससे पूछती है कि "किसने सुख-दुःख में मेरा साथ न छोड़ने की प्रतिज्ञा अग्निवेदी के सामने की है ?...क्या मैं रामगुप्त की महादेवी नहीं हूँ ?" तो वह उत्तर में कहता है—"क्यों नहीं ? परन्तु रामगुप्त ने ऐसी कोई प्रतिज्ञा न की होगी। मैं तो उस दिन द्राक्षासव में डुबकी लगा रहा था। पुरोहितों ने न जाने क्या-क्या पढ़ा दिया होगा।" इसी से ध्रुवस्वामिनी उसे निर्लज्ज, मद्यप और क्लीव कह कर सम्बोधित करती है।

उसे किसी पर विश्वास नहीं। एकमात्र धूर्त और प्रवंचक शिखर स्वामी पर ही उसका विश्वास है। और क्रूरता का तो कहना ही क्या ? वह अबला और परम रक्षणीया नारी कोमा तथा उसके निःशस्त्र पिता मिहिरदेव का वध कराने में किंचित् संकोच नहीं करता। इतना ही नहीं, चन्द्रगुप्त द्वारा प्राप्त विजय के बल पर वह निरीह शकों का संहार भी करवा देता है—नृशंसता और कठोरतापूर्वक। अपने सामन्तों और चन्द्रगुप्त, ध्रुवस्वामिनी आदि को बन्दी बनाना उसके लिए आसान है। उसकी क्रूरता की सीमा तो वहाँ है जब अपने ही अनुज चन्द्रगुप्त के पीछे पहुँच कर उसे कटार निकाल कर मारना चाहता है। इसी से कोई सामन्त उसे हिंसक, पाखण्डी, क्षीव और क्लीव कहते हैं तो कोई गुप्त कुल के गौरव को कलंक-कालिमा के सागर में निमज्जित करने वाला।

उसके छल तथा कपटपूर्ण पतित आचरण को देख कर ही मन्दाकिनी कहती है—"सच है, वीरता जब भागती है, तब उसके पैरों से राजनीतिक छल-छन्द की धूल उड़ती है।"

अपने इन्हीं दुर्गुणों के कारण वह परिषद् द्वारा राज्यच्युत किया जाता है तथा ध्रुवस्वामिनी से उसका सम्बन्ध विच्छेद होता है। अंत में सामन्तों द्वारा उसके अविवेकपूर्ण आचरण के कारण उसका वध भी हो जाता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शकराज

शकराज नाटक के द्वितीय अङ्क में ही दृष्टिगोचर होता है और उसी अङ्क में उसकी मृत्यु भी होती है। फिर भी इस छोटे-से अङ्क में ही उसका चारित्रिक विकास पूर्णरूपेण दिखाया गया है।

शकराज एक महत्त्वाकांक्षी व्यक्ति है। उसमें रण-चातुर्य और दृढ़ता भी है। पर है वह घोर बर्बर, अविनीत और कठोर। वह अपनी धुन में किसी का कुछ सुनता नहीं, सुनना उसे पसन्द नहीं। वह घोर पुरुषार्थ में विश्वास रखता है। सौभाग्य और दुर्भाग्य को वह मनुष्य की दुर्बलता का भय मानता है और पुरुषार्थ को ही सबका नियामक समझता है। उसका विश्वास है कि पुरुषार्थ ही सौभाग्य को खींच लाता है।

कोमा उसकी प्रेमिका है। मिहिरदेव कोमा के पिता तुल्य और महा-ज्योतिषी हैं। पर शकराज इनमें से अपनी जिद के सामने किसी की बात नहीं सुनता और स्वेच्छाचरण करने को स्वतंत्र रहता है। जब कोमा राजनीति के प्रतिशोध में किसी नारी को कुचलने का विरोध करती है तो उसे वह कह बैठता है—"जो विषय समझ में न आवे, उस पर विवाद न करो।" इसी प्रकार जब मिहिरदेव उसे स्त्रियों का स्नेह भंग करने के परिणाम की याद दिलाते हैं तो वह करारा उत्तर देता है—"मैं समझता हूँ कि आप मेरे राजनीतिक कामों में हस्तक्षेप न करें तो अच्छा हो।" इतना ही नहीं, जब मिहिरदेव उसे राजनीति के पीछे नीति की याद दिलाते हैं जिसका विश्व-मानव से सम्बन्ध है तथा दो प्यार करने वाले हृदयों के बीच स्वर्गीय ज्योति का निवास बताते हैं तो वह झल्ला उठता है और कह उठता है—"बस, बहुत हो चुका! आप के महत्त्व की भी एक सीमा होगी। अब आप यहाँ से नहीं जाते हैं तो मैं ही चला जाता हूँ।" इस प्रकार अपने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आचार्य का भी अपनी प्रेयसी के साथ ही अनादर, उपेक्षा और अपमान करते उसे ग्लानि नहीं होती। कितना दुर्विनीत है वह !

शकराज में प्रतिशोध की भावना भी जबरदस्त है। वह समुद्रगुप्त द्वारा पराजित अपने पूर्वजों की पराजय का भयंकर प्रतिशोध उसकी ही संतान रामगुप्त से लेता है। इसी कारण अपने लिए वह ध्रुवस्वामिनी और अपने सामन्तों के लिए रामगुप्त की सामन्त-पत्नियों की माँग करता है। शिविर में ध्रुवस्वामिनी और सामन्त पत्नियों के आने की सूचना से कोमा कहती है—"मेरे राजा ! आज तुम एक स्त्री को अपने पति से विच्छिन्न करा कर अपने गर्व की तृप्ति के लिए कैसा अनर्थ कर रहे हो ?" तो शकराज कोमा की हँसी उड़ा कर कहता है—"पागल कोमा ! वह मेरी राजनीति का प्रतिशोध है।" कितनी नृशंसता है उसमें !

उसमें दंभ भी कम नहीं है। वह संसार के नियम के अनुसार अपने से महान् के सम्मुख थोड़ा-सा विनीत बन कर नहीं रह सकता। वह कोमा के समझाने पर कि "अभावमयी लघुता में मनुष्य अपने को महत्त्वपूर्ण दिखाने का अभिनय न करे तो क्या अच्छा नहीं है ?" वह चिढ़ जाता है—"यह शिक्षा अभी रहने दो कोमा, मैं किसी से बड़ा नहीं हूँ तो छोटा भी नहीं बनना चाहता।"

वह विलासी प्रकृति का हृदयहीन और क्रूर व्यक्ति है। उसकी बर्बरता उसकी जाति के अनुकूल ही है। खिंगल द्वारा यह जान कर कि रामगुप्त ने उसके माँगे हुए सब उपहारों को देना स्वीकार किया और ध्रुवस्वामिनी शीघ्र ही उसकी सेवा में उपस्थित होगी तो वह ठठा उठता है—"आज देव-पुत्रों की स्वर्गीय आत्माएँ प्रसन्न होंगी। उनकी पराजयों का यह प्रतिशोध है। हमलोग गुप्तों की दृष्टि में जंगली, बर्बर और असभ्य हैं तो फिर मेरी प्रतिहिंसा भी बर्बरता के ही अनुकूल होगी।" यह उसकी बर्बर प्रवृत्ति का सबूत है। फिर इसी खुशी में वह सोने की झाँझ वाली नाच का प्रबन्ध करता है। नृत्य और मदिरा का आनन्द सबके साथ वह खूब ही लेता है। वह कोमा को पाषाणी कह कर अपने पास बुलाता है और प्यास की

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तृप्ति के लिए एक प्याला मदिरा ही चाहता है, शीतल जल-धारा नहीं। अपनी कामान्धता के कारण ही वह ध्रुवस्वामिनी से एकान्त में मिलने को तैयार हो जाता है और तभी कोमा को देख कर कह उठता है—"अरे, तुम अभी यहीं खड़ी हो? मैं तो जैसे भूल ही गया था। हृदय चंचल हो रहा है। मेरे समीप आओ कोमा।" सच तो यह है कि उसे विलास के सिवा और कुछ चाहिये ही नहीं। वर्बरता उच्छृंखल कामुकता की मदिरा पी कर जीती है। इसी से आत्मसमर्पण करने वाली कोमा को प्यार के प्रतिदान में वह उपेक्षा और अपमान देता है। जब चन्द्रगुप्त ध्रुवस्वामिनी का रूप धारण कर उसके साथ ही शक-शिविर में जाता है तो वह दोनों को ध्यान से देखता हुआ कह उठता है—"क्या चिन्ता यदि मैं दोनों को ही रानी समझ लूँ।" इससे भी उसकी विलासिता प्रकट होती है।

इतना होते हुए भी वह एक चतुर एवं निपुण राजनीतिज्ञ है। वह रामगुप्त की क्लीवता को जानता है इसी से उसके दुर्ग को घेर कर लज्जा-जनक प्रस्ताव भेजता है। वह जानता है कि रामगुप्त के पास सशक्त सेना है पर उसकी दुर्बलता भी उससे छिपी नहीं है। इसी कारण उसका प्रस्ताव स्वीकृत भी हो जाता है।

वह पौरुष में विश्वास करता हुआ भी ग्रहों-नक्षत्रों की शक्ति पर विश्वास करता है और भयभीत हो जाता है। कोमा द्वारा धूमकेतु की चर्चा से ही वह भयभीत हो जाता है और उस अमंगल की शान्ति के लिए आचार्य को बुलाना चाहता है। और इस अमांगलिक ग्रह का फल भी उसे शीघ्र ही मिलता है। शक-शिविर में चन्द्रगुप्त से उसका द्वन्द्व-युद्ध होता है और काल के गाल में समा जाता है उसी समय।

निश्चय ही शकराज के द्वारा प्रसाद जी लोगों को यह बताना चाहते हैं कि शक्ति का यदि वर्बरता, दुर्नीति एवं विलासिता से सम्पर्क हो जाता है तो वह शीघ्र ही विनाश को आमंत्रित करती है और व्यक्ति को मृत्यु-गह्वर में ले जा कर ही दम लेती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शिखर स्वामी

शिखर स्वामी रामगुप्त का अमात्य यानी मंत्री है जो उसका परम विश्वास-पात्र है। शिखर स्वामी का व्यक्तित्व बड़ा ही दुर्बल और प्रवंचनापूर्ण है।

हम देखते हैं कि सम्राट् समुद्रगुप्त की इच्छा और आज्ञा के विरुद्ध शिखर स्वामी रामगुप्त को राज्य-सिंहासन का उत्तराधिकारी बनाने में प्रबल योगदान देता है। इसके लिए चन्द्रगुप्त जैसे वीर, पराक्रमी और योद्धा को भी राज्यच्युत करने से उसकी राजनीति बाज नहीं आती। उसी की मंत्रणा से ध्रुवस्वामिनी, जो चन्द्रगुप्त की वाग्दत्ता पत्नी थी, रामगुप्त से व्याही जाती है। इसी से रामगुप्त उसे राजनीति-शास्त्र का बृहस्पति कहता है।

हर मंत्री चाहता है कि उसका राजा, स्वामी, दुर्बल हो जो उसके संकेत पर चला करे। शिखर स्वामी भी ऐसा ही चाहता है। इसी से उसने रामगुप्त के राज्याधिकारी होने का समर्थन किया, क्योंकि वह क्लीव था। फिर तो वह हर ऐसे कार्य का समर्थन करने लगा जिसमें रामगुप्त की प्रसन्नता बनी रहे। वह सम्यक् विचार दे कर रामगुप्त को विलासिता के पङ्क से हटाने की कोशिश नहीं करता बल्कि उसकी दुर्बलता के अनुकूल ही कार्य करता है।

जब शकराज ध्रुवस्वामिनी को भेजने का संधि-प्रस्ताव भेजता है तो वह रामगुप्त को युद्ध कर कुल-गौरव की रक्षा तथा राज्य की सुरक्षा के लिए उत्प्रेरित नहीं कर उसकी हाँ में हाँ मिलाता हुआ कहता है—"राजनीति की दृष्टि से महादेवी का वहाँ जाना आवश्यक है।" और इसके लिए वह अपने राजनीतिक सिद्धान्तों की दुहाई देता है। उसके राजनीतिक सिद्धान्त भी कुटिलता एवं निर्लज्जतापूर्ण हैं। वह ध्रुवस्वामिनी से कहता है—"राजनीति के सिद्धान्त में राष्ट्र की रक्षा सब उपायों से करने का आदेश है। उसके लिए राजा, रानी, कुमार और अमात्य सबका विसर्जन किया जा सकता है; किन्तु राज-विसर्जन अन्तिम उपाय है।" और जब ध्रुवस्वामिनी इसका विरोध

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करती हुई उन लोगों को आपत्ति से बचाने के लिए स्वयं वहाँ से चली जाना चाहती है तो शिखर कह उठता है—"उँह, राजनीति में ऐसी बातों को स्थान नहीं। जब तक नियमों के अनुकूल सन्धि का पूर्ण रूप से पालन न किया जाय तब तक सन्धि का कोई अर्थ ही नहीं।" यह है शिखर स्वामी की राजनीतिक क्षुद्र विचारधारा !

कहने के लिए तो वह कहता है कि "विनय गुप्त-कुल का सर्वोत्तम गृह-विधान है" और राज्य-रक्षा के लिए प्राण-दण्ड को भी अविचल भाव से ग्रहण करने को तैयार है किन्तु राजा और राष्ट्र की रक्षा होनी चाहिये, लेकिन उसका विनय प्रवञ्चकों का आवरण है जिसमें शील का पूर्ण अभाव है। उसके राष्ट्र-रक्षा-सिद्धान्त में उसकी स्वार्थपरता छिपी है।

शिखर स्वामी पूरा अवसरवादी है। जब तक रामगुप्त सबल बना रहा यानी परिषद् के लोगों का समर्थन उसे मिलता रहा वह रामगुप्त के हाँ में हाँ मिला कर गुप्त कुल के गौरव और नारी-मर्यादा को भी धूल में मिलाने के लिए तैयार रहता है तथा चन्द्रगुप्त और पुरोहित को भी फटकार दिया करता है पर ज्योंही परिस्थिति चन्द्रगुप्त के अनुकूल हो जाती है और परिषद् चन्द्रगुप्त को ही सम्राट् घोषित करती है वह चन्द्रगुप्त की ओर हो जाता है और उससे विनम्र भाषा में बातें करने लगता है। वह रामगुप्त से कह देता है कि "परिषद् का विचार तो मानना ही होगा।" यह है उसकी अवसर-वादिता और छलपूर्ण नीति।

शिखर स्वामी धूर्त्त और कुटिल वक्र नीति का अमात्य है। यही कारण है कि कभी रामगुप्त का पूर्ण विश्वासभाजन बना था और अंत में चन्द्रगुप्त की ओर हो कर अपने स्वार्थ की रक्षा—मंत्रि-पद पर बने रहने की चाह—में भी सफल हो गया। इससे स्पष्ट ही विदित हो जाता है कि वह अन्याय और अनीति की भी अपनी स्वार्थसिद्धि में परवाह नहीं करता था।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मिहिरदेव

मिहिरदेव ज्योतिषाचार्य हैं। वे क्षण भर के लिए ही सामाजिकों के समक्ष मंच पर उपस्थित होते हैं, फिर भी उनका चरित्र प्रभावोत्पादक तथा आकर्षक है। वे शकराज के आचार्य हैं। एक आचार्य की भाँति ही उनके चरित्र में सात्विकता, प्रकृति-प्रेम, करुणा, विश्वात्मा के प्रति आकर्षण तथा गंभीरता और विवेकशीलता है। अपने नीतिपरायण और सुदृढ़ व्यक्तित्व तथा परिपक्व विचारशीलता के कारण ही वे सबको समुचित बातें कहते हैं, चाहे वह शकराज हो या कोमा।

कोमा उनकी प्रतिपालिता पुत्री है। वे उसे क्षण भर भी उदास नहीं देखना चाहते। उसे ही देखने वे मंच पर आते हैं। उन्हें जब शकराज से पता चलता है कि ध्रुवस्वामिनी के आगमन का विरोध कोमा करती है तो वे भी उसका समर्थन करते हैं। मिहिर देव किसी नारी के सम्मान को नष्ट होते देखना नहीं चाहते। इसे वे भयानक अपराध समझते हैं। इसी से वे कहते हैं—"राजा! स्त्री का सम्मान नष्ट करके तुम जो भयानक अपराध करोगे, उसका फल क्या अच्छा होगा?"

मिहिरदेव प्रेम को स्वर्गीय विभूति समझते हैं और उसे नष्ट कर देना अत्यंत हानिकारक मानते हैं। वे जानते हैं कि शकराज को कोमा प्यार करती है। वह उसकी भावी पत्नी है। पर जब इस पर शकराज क्षोभ व्यक्त करता है तो वे कह उठते हैं—"राजा! स्त्रियों का स्नेह—विश्वास भंग कर देना, कोमल तन्तु को तोड़ने से भी सहज है; परन्तु सावधान हो कर उसके परिणाम को भी सोच लो।" वे आगे और भी स्पष्ट शब्दों में कहते हैं कि "इस भीषण संसार में एक प्रेम करने वाले हृदय को खो देना, सबसे बड़ी हानि है। शकराज! दो प्यार करने वाले हृदयों के बीच में स्वर्गीय ज्योति का निवास है।"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मिहिरदेव राजनीति को ही जीवन का सब कुछ नहीं मानते। वे मनुष्य की उस प्रीति-नीति पर विश्वास करते हैं जिसके सूत्र में विश्व का सकल मानव-समुदाय बँधा है। जब शकराज उन्हें अपने राजनीतिक कार्यों में हस्तक्षेप करने से रोकता है तो वे उत्तर देते हैं—"राजनीति ? राजनीति ही मनुष्यों के लिए सब कुछ नहीं है। राजनीति के पीछे नीति से भी हाथ न धो बैठो; जिसका विश्व-मानव के साथ व्यापक सम्बन्ध है।" मिहिरदेव के अनुसार राजनीति की साधारण छलनाओं से सफलता प्राप्त करके क्षण भर के लिए अपने को चतुर समझना जीवन की एक भूल मात्र है। ऐसा लगता है मानो राजनीति से उन्हें स्वाभाविक घृणा हो।

मिहिरदेव में आत्म-सम्मान की भावना भी है। जब शकराज उन्हें उनके महत्त्व की सीमा की याद दिलाता है और उन्हें जाने को कहता है तो वे उस अपमान को सह नहीं पाते और वहाँ से शीघ्र प्रस्थान कर देते हैं।

वे कोमा से मोह का परित्याग कर चलने का आग्रह करते हैं क्योंकि वे जानते हैं कि छल का बहिरंग सुन्दर होता है—विनीत और आकर्षक भी; पर दुःखदायी और हृदय को वेधने के लिए।

आचार्य मिहिरदेव शान्त प्रकृति के और प्रकृति के प्रेमी भी हैं। यही कारण है कि वे राजनीतिक छल-छंदों को कभी प्रश्रय नहीं दे कर विश्व-मानव से प्रीति-नीति के द्वारा सम्बन्ध जोड़ना चाहते हैं और कोमा को शकराज के प्रतारणापूर्ण वातावरण से दूर चलने का आग्रह करते हुए कहते हैं कि "हमलोग अखरोट की छाया में बैठेंगे—झरनों के किनारे दाख के कुंजों में विश्राम करेंगे। जब नीले आकाश में मेघों के टुकड़े, मानसरोवर जाने वाले हंसों का अभिनय करेंगे, तब तू अपनी तकली पर ऊन कातती हुई कहानी कहेगी और मैं सुनूँगा।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि मिहिरदेव जितने ही गंभीर विचारक, पंडित-मनीषी, करुणापूर्ण तथा विश्व-मानवता में विश्वास करने वाले प्राणी हैं उतने ही नीतिवान् और निसर्ग के प्रेमी भी हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पुरोहित

यद्यपि ध्रुवस्वामिनी नाटक में पुरोहित बहुत कम ही क्षणों के लिए अंत में आते हैं किन्तु उनका चरित्र एक विशिष्ट महत्त्व रखता है। वे नाटक में उस घड़ी उपद्रवों के बाद शान्ति-कर्म के हेतु स्वस्त्ययन कराने उपस्थित होते हैं जब ध्रुवस्वामिनी और चन्द्रगुप्त द्वारा शकराज के दुर्ग पर अधिकार कर लिया जाता है। उन्हें इस बात की प्रसन्नता होती है कि वीर रमणी की तरह महादेवी ने अपने साहस के बल पर उस दुर्ग पर अधिकार कर लिया।

पुरोहितजी स्त्री-पुरुष के परस्पर विश्वासपूर्वक अधिकार-रक्षा और सहयोग को ही विवाह मानते हैं। इनके अभाव में वे धर्म और विवाह को खेल ही समझते हैं। जब ध्रुवस्वामिनी मनुष्य की दी हुई महादेवी की उपाधि लौटा कर रामगुप्त की सहधर्मिणी कहाने में धर्म-शास्त्र के निर्णय की प्रतीक्षा करती हैं तो शिखर स्वामी द्वारा चले जाने का संकेत पा कर भी पुरोहितजी दृढ़ता के साथ वहाँ पहुँचते हैं और कहते हैं—"नहीं, मैं नहीं जाऊँगा। प्राणिमात्र के अन्तस्तल में जाग्रत रहने वाले महान् विचारक धर्म की आज्ञा, मैं न टाल सकूँगा। अभी जो प्रश्न अपनी गंभीरता में भीषण हो कर आपलोगों को विचलित कर रहा है, मैं ही उसका उत्तर देने का अधिकारी हूँ। विवाह का धर्मशास्त्र से घनिष्ठ सम्बन्ध है।" और वे उन दोनों के वैवाहिक प्रश्न को ले कर धर्मशास्त्रानुकूल सामाजिक व्यवस्था का विधान करते हैं। वे यह घोषित करते हैं कि रामगुप्त का ध्रुवस्वामिनी पर कोई अधिकार नहीं। इस प्रकार वे धर्म की व्यवस्था देने में डरते नहीं तथा उचित बात कहने में संकोच नहीं करते।

पुरोहित दृढ़ हृदय के और निर्भीक भी हैं। वे रामगुप्त के पुरोहित होने पर भी उसे "गौरव से नष्ट, आचरण से पतित और कर्मों से राज—किल्विषी क्लीव" तक कह देते हैं। जब रामगुप्त उन्हें मृत्यु का भय दिखाता है तो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वे कितनी निर्भीकता से उत्तर देते हैं —"ब्राह्मण केवल धर्म से भयभीत है। अन्य किसी भी शक्ति को वह तुच्छ समझता है। तुम्हारे वधिक मुझे धार्मिक सत्य कहने से रोक नहीं सकते। उन्हें बुलाओ, मैं प्रस्तुत हूँ।" और इस प्रकार वे अन्त में स्पष्ट रूप से कह देते हैं कि "धर्मशास्त्र रामगुप्त से ध्रुवस्वामिनी के मोक्ष की आज्ञा देता है।"

अतः हम पुरोहित के चरित्र में एक धर्मनिष्ठ ब्राह्मण की निर्भीकता, धर्म-परायणता, स्पष्टवादिता और शास्त्रपरायणता के साथ ही जातीय गौरव के भाव कूट-कूट कर भरे पाते हैं।

ध्रुवस्वामिनी-कालीन सामाजिक वातावरण

ध्रुवस्वामिनी गुप्तकालीन नारी थी। गुप्तकाल भारतीय इतिहास का मध्याह्न-काल या स्वर्ण-काल कहा जाता है। किन्तु गुप्तकाल के आखिरी दिन में भारतीय संस्कृति, सभ्यता, शक्ति और वैभव का सूर्य ढलने लग गया था। गोधूलि की सहज धूमिलता भारतीय समाज पर अपना कज्जलित आवरण डालने लग गयी थी। यानी वे पतन और ह्रास के दिन थे जब सम्राट् समुद्रगुप्त विजयाभियान से लौट कर मरण के चरण पर घुटने टेक चुके थे।

जब तक सम्राट् समुद्रगुप्त जीवित रहे उन्होंने सशक्त सैन्यबल से दिग्विजय की। ध्रुवस्वामिनी विजयोपहार में उनके दरबार में आयी—चन्द्रगुप्त की वाग्दत्ता पत्नी हो कर। किन्तु समुद्रगुप्त के मरते ही गुप्त-साम्राज्य अधःपतन के गर्त्त में गिरने लगा।

राजनीतिक वातावरण :—शिखर स्वामी ने छल से रामगुप्त को राजगद्दी दिलवा दी। रामगुप्त कायर और क्लीव था। शिखर स्वामी ने, जैसा कि हर मंत्री चाहता है, अपने स्वार्थ साधने के लिए, एक दुर्बल व्यक्ति को षड्यंत्र से सम्राट् बनवाया। वह आचरण से उद्दंड तथा उच्छृंखल, विचार से छल-छंद भरा और हृदय से बड़ा ही दुर्बल और कमजोर था। इससे यह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रतीत होता है कि तत्कालीन राजकीय वातावरण छल-छंदों से भरा और कुचक्रों तथा षड्यंत्रों से परिपूर्ण था।

रामगुप्त कुबड़ों और बौनों के बीच रह कर अपना मनोरंजन करता था। नर्तकियों से घिरा तथा मदिरा के प्यालों में डूबा रामगुप्त आचरण-भ्रष्ट था। लगता है तत्कालीन सम्राट् निःशक्त और विलासी हो कर जीवन का उन्मुक्त उपभोग करने लग गया था और युवतियों के सौन्दर्यसागर से अपनी उद्दाम कामुकता की कलशी भरने लग गया था। फलतः उसे शासन-सूत्र सँभालने और राज्य, राष्ट्र तथा राजमहिषी के गौरव की रक्षा करने का अवकाश ही कहाँ था!

शकराज ने रामगुप्त से संधि की शर्त्त में अपने लिए ध्रुवस्वामिनी माँगी और अपने सैनिकों के लिए उसके सामंतों की पत्नियाँ। ध्रुवस्वामिनी ने इस प्रस्ताव का हर प्रकार से विरोध किया किन्तु शिखर स्वामी ने कहा—"राजनीति के सिद्धान्त में राष्ट्र की रक्षा सब उपायों से करने का आदेश है। उसके लिए राजा, रानी, कुमार और अमात्य सबका विसर्जन किया जा सकता है, किन्तु राज-विसर्जन अंतिम उपाय है।" राजनीतिक सिद्धान्त की ऐसी व्याख्या विरल ही है। इससे ऐसा लगता है मानों तत्कालीन राजा में सद्विवेक का पूर्ण अभाव था। वह मंत्री पर विशेष निर्भर करता था तथा मंत्री भी उपयुक्त राय नहीं दिया करते थे। सारा शासन-तंत्र ढीला और अस्तव्यस्त था। कादम्ब, कंचन और कामिनी के बीच ही राजा का जीवन व्यतीत होता था। अतः उस समय किसी की भी गौरव-मर्यादा की रक्षा नहीं हो पाती थी।

सामाजिक वातावरण :—राजा के व्यक्तित्व और आचार-विचार से ही सामाजिक स्थिति का पता भी सुगमता से लग जाता है। उस काल में समाज में विलासिता प्रधान हो गयी थी। लोग अपने विलास की पूर्त्ति के लिए कर्त्तव्याकर्त्तव्य एवं औचित्यानौचित्य पर किंचित् भी ध्यान नहीं देते थे। यही कारण है कि रामगुप्त सदा मदिरा में डूबा और कामिनियों से घिरा हिजड़ों-बौनों के नृत्य में निमग्न रहता है। हिजड़ों-बौनों को

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अपने मनोरंजन का साधन बनाना समाज की कितनी पतनावस्था की सूचना देता है। फिर ध्रुवस्वामिनी जो चन्द्रगुप्त की वाग्दत्ता पत्नी थी उसी से व्याह करने में रामगुप्त को तनिक भी संकोच नहीं हुआ जब कि चन्द्रगुप्त उसका छोटा भाई था। स्वयं ध्रुवस्वामिनी निरभ्र प्राची के बाल अरुण चन्द्रगुप्त से अनुराग करती थी पर उसे रामगुप्त से व्याह करने के लिए विवश होना पड़ा। इससे पता चलता है कि विवाह के सम्बन्ध में युवतियाँ उस समय स्वतंत्र नहीं थीं और उन्हें पुरुषों की इच्छाओं पर चलना पड़ता था। ध्रुवस्वामिनी अपने पिता द्वारा उपहार में स्कन्दगुप्त को दी गयी, चन्द्रगुप्त की पत्नी बनने के लिए, व्याह उसका हुआ रामगुप्त से और रामगुप्त भी उसे शकराज के यहाँ जबरदस्ती उपहारस्वरूप भेज देता है। ऐसा लगता है मानों नारी तत्कालीन समाज में उपहार की वस्तु हो गयी हो, जिसकी आशाओं, आकांक्षाओं, विचारों और महत्त्वाकांक्षाओं का कोई मूल्य ही नहीं हो। नाटक में ध्रुवस्वामिनी द्वारा व्यक्त प्रथम वाक्य से ही पता चलता है कि उस समय नारी को पुरुषों के पाँव तले रहना और पिसना पड़ता था।

राज-दरबार में नर्त्तकियाँ रहती थीं। पुरुष नारी के प्रेम का कोई ध्यान नहीं करते थे। किन्तु ध्रुवस्वामिनी और मंदाकिनी के विद्रोहात्मक स्वर से यह भी आभास मिलता है कि उस समय की नारियों में अपने सतीत्व की चेतना जग गयी थी तथा वे पुरुषों के समभाग की अधिकारिणी होना चाहती थी—क्रीतदासी नहीं।

धार्मिक स्थिति :—उस समय लोग धर्म की व्यवस्था में विश्वास करते थे। शकराज भी मिहिरदेव का सम्मान करता था और रामगुप्त से, परिषद् ने पुरोहित के आदेशानुसार ही, ध्रुवस्वामिनी को मोक्ष दिलायी।

स्त्री और पुरुष किसी स्थिति-विशेष में अपना दाम्पत्य सम्बन्ध तोड़ ले सकते थे। धर्म-ग्रंथों ने ऐसी व्यवस्था कर दी थी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आचार्य कौटिल्य के अनुसार ८ वर्ष तक वन्ध्या, १० वर्ष विन्दु अर्थात् नश्यत् प्रसूति, १२ वर्ष तक कन्या-प्रसविनी की प्रतीक्षा करके पुत्रार्थी दूसरी स्त्री ग्रहण कर सकता है।

वर्षाण्यष्टावप्रजायमानामपुत्रां वन्ध्यां चाकांक्षेत् दशविन्दुं,
द्वादशकन्याप्रसविनीम् । ततः पुत्रार्थी द्वितीयां विन्देत् ।

कौटिल्य ने ही ऐसा ही अधिकार स्त्रियों को भी दिया है। पति यदि नीच हो, परदेश चला गया हो, या राज्य से बाहर निकाल दिया गया हो, पतित हो, नपुंसक हो या मर गया हो तो स्त्री दूसरा व्याह कर सकती है।

नीचत्वं परदेशं वा प्रस्थितो राजकिल्विषी ।
प्राणाभिहन्ता पतितस्त्याज्यः क्लीबोऽपि वा पतिः ।।

पराशर भी पति के नष्ट होने, मरने, नपुंसक होने, पतित होने या संन्यास धारण करने पर पत्नी को दूसरा पति वरण करने का अधिकार देते हैं—

नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीवे च पतिते पतौ ।
पञ्चस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते ।।

इन्हीं शास्त्रीय व्यवस्थाओं की उन दिनों मान्यता थी। आवश्यकता पड़ने पर लोग शास्त्र के इस शस्त्र को अपना सकते थे। पुरोहित ने भी इन्हीं तर्कों के सहारे स्पष्ट रूप से कह दिया कि "यह रामगुप्त मृत और प्रव्रजित तो नहीं पर गौरव से नष्ट, आचरण से पतित और कर्मों से राज-किल्विषी क्लीव है। ऐसी अवस्था में रामगुप्त का ध्रुवस्वामिनी पर कोई अधिकार नहीं।" आगे उन्होंने कहा कि "मैं स्पष्ट कहता हूँ कि धर्मशास्त्र रामगुप्त से ध्रुवस्वामिनी के मोक्ष की आज्ञा देता है।" इस प्रकार उक्त काल में नर-नारी सम्बन्ध-विच्छेद की भी धार्मिक व्यवस्था थी जिसे पुरोहित द्वारा निर्णयोपरान्त सबको मानना पड़ता था।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ध्रुवस्वामिनी की नारी समस्या

प्रसाद जी ने ध्रुवस्वामिनी नाटक में नारी की समस्या के दो रूपों को हमारे समक्ष बड़ी सफलता से प्रस्तुत किया है। पहली समस्या है नारी के प्रेम और अनुराग की। दूसरी समस्या है स्त्री-पुरुष के वैवाहिक सम्बन्ध-विच्छेद की। इसके लिए उन्होंने दो नारी-पात्रों को चुना है। एक है कोमा—प्रेम और अनुराग की आग में जलने वाली, अनुभूतिमयी। दूसरी है ध्रुवस्वामिनी—अपने सतीत्व, आत्मगौरव और स्वाभिमान की रक्षा में सदैव सतर्क, चेतनापूर्ण विद्रोहिणी।

पहले हम ध्रुवस्वामिनी को लें। नारी-जीवन में विवाह का बड़ा महत्त्व है। जब वह किसी के हाथ में अपना हाथ सौंपती है तो हाथ ही नहीं सम्पूर्ण जीवन भर के लिए अपना सब कुछ समर्पित कर देती है। नर और नारी वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर अपने साथ समाज का भी हित करते हैं। किन्तु यह विवाह जब अविश्वास-पूर्ण, अरक्षा और असहयोग-पूर्ण हो जाता है तो दाम्पत्य जीवन में एक भयंकर समस्या उठ खड़ी होती है। ध्रुवस्वामिनी के साथ ऐसा ही हुआ। वह वस्तुतः चन्द्रगुप्त की वाग्दत्ता पत्नी थी पर विवाह उसका हुआ रामगुप्त जैसे क्लीव, अधम और पतित से। वह मद्यप और दुराचारी था। कभी उसने अपनी पत्नी से प्रेम-भरा संभाषण तक नहीं किया। उल्टे शकराज द्वारा संधि प्रस्ताव आने पर ध्रुवस्वामिनी को व्यक्तिगत सम्पत्ति समझ कर कह उठा—"जाओ, तुमको जाना पड़ेगा। तुम उपहार की वस्तु हो। आज मैं तुम्हें किसी दूसरे को देना चाहता हूँ। इसमें तुम्हें क्या आपत्ति है।" उसे यह भी याद नहीं कि उसने विवाह के दिन ध्रुवस्वामिनी की रक्षा की प्रतिज्ञा की थी। वह तो द्राक्षासव में डुबकी लगा रहा था। ध्रुवस्वामिनी के सारे अनुनय-विनय निरर्थक सिद्ध हुए।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ऐसी स्थिति में नारी विद्रोह नहीं करे तो क्या करे! पुरातन नारी सब कुछ सह कर भी पति-सेवा में निरत रहती थी। नारी के इस त्याग का पुरुषों ने अनुचित लाभ उठाना आरम्भ कर दिया। उसे अपनी पशु-सम्पत्ति समझ कर अत्याचार करने का अभ्यास बना लिया। नया युग नारी का यह अपमान सह नहीं सकता। नये युग की नारी विवाह का अर्थ परस्पर का विश्वास और हार्दिक सहयोग लगाती है। इनके अभाव में वह हर संभव विद्रोह कर सकती है। यहाँ तक कि पुरुष से अपना सम्बन्ध-विच्छेद भी कर ले सकती है।

ध्रुवस्वामिनी ने भी ऐसा ही किया। वह नये युग की जागरण-शीला नारी की जीवंत प्रतीक है। उसने रामगुप्त के अन्याय के विरुद्ध जोरदार स्वर ही नहीं उठाया बल्कि विद्रोह भी किया। उसने रामगुप्त से स्पष्ट कहा—"मैं उपहार में देने की वस्तु, शीतल मणि नहीं हूँ। मुझमें रक्त-सी तरल लालिमा है। मेरा हृदय उष्ण है और उसमें आत्म-सम्मान की ज्योति है। उसकी रक्षा मैं ही करूँगी।" रामगुप्त को क्लीव, निर्लज्ज और मद्यप कहने में भी उसे संकोच नहीं होता।

वर्त्तमान नारी पुरुष के हर पाशविक प्रस्ताव पर घुटने टेक देने वाली नहीं। वह या तो प्रतिकार करेगी या मर जायगी या मार डालेगी। ध्रुवस्वामिनी ने भी कुछ वैसा ही किया और अंत में उसने उस पुरोहित को फटकारा भी जिसके शास्त्र ने स्त्रियों की सारी स्वाधीनता का अपहरण कर लिया है। बड़े ही आक्रोश के स्वर में उसने नारियों के सम्बन्ध में कहा कि "पराधीनता की एक परम्परा-सी उनकी नस-नस में—उनकी चेतना में न जाने किस युग से घुस गयी है।" अन्त में उसने वैवाहिक शृंखला को उतार कर अपने प्राण-प्रसून चन्द्रगुप्त से, परिणय-सम्बन्ध स्थापित कर लिया और इस प्रकार पुरुषों की उच्छृंखलता और राक्षसता को खुली चुनौती दे कर उसने नारी-स्वतंत्रता का मार्ग प्रशस्त कर दिया।

किन्तु विद्रोह और स्वातंत्र्य ही नारी-जीवन की सफलता की एकमात्र कुंजी नहीं है। समता के संघर्ष में नारी का नारीत्व ही कहीं न मिट जाय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यह भी एक प्रश्न है। क्या नारी का सच्चा स्वरूप विद्रोह, संघर्ष और क्रांति का ही है? क्या वैवाहिक सम्बन्धों को तोड़ कर ही नारी संतुष्ट और सुखमय जीवन व्यतीत कर सकती है? क्या शाश्वत अनुराग, मूक प्रेम और बलिदान-त्याग का नारी-जीवन में कोई मूल्य नहीं? यह भी ध्रुवस्वामिनी नाटक की एक समस्या है।

कोमा एक ऐसी नारी है जो शाश्वत अनुराग की दीपशिखा है जो स्वतः जलती रहेगी, तिल-तिल जलती रहेगी पर अपने प्रेम के प्रकाश में किंचित् मलिनता नहीं आने देगी। उसने शकराज से प्रेम किया और उसके प्रतिदान में उसे मिली उपेक्षा, अवमानना, तिरस्कार और घृणा। किन्तु तब भी उसने अपने प्रेम-कोष का रत्न उड़ेलने में कृपणता नहीं की। प्रेम के अपराध में दंडस्वरूप निराशा, निष्पीड़न और उपहास मिलने पर भी जब उसने शकराज की लाश ध्रुवस्वामिनी से माँगने आयी तो उसने कहा—"रानी, तुम भी स्त्री हो। क्या स्त्री की व्यथा न समझोगी? आज तुम्हारी विजय का अन्धकार तुम्हारे शाश्वत स्त्रीत्व को ढक ले, किन्तु सबके जीवन में एक बार प्रेम की दीपावली जलती है। जली होगी अवश्य। तुम्हारे भी जीवन में वह आलोक का महोत्सव आया होगा, जिसमें हृदय, हृदय को पहचानने का प्रयत्न करता है, उदार बनता है और सर्वस्व दान करने का उत्साह रखता है।" सचमुच कोमा ऐसी नारी है जो नर-तरु से अपनी भुज-लता फँसा कर झूले से झोंके खाती रहती है तब भी अपनी आँखों में अश्रु रख कर अपने अधरों पर प्रेम की मुस्कान को धूमिल नहीं होने देती है।

प्रसाद जी ने नारी-जीवन की—प्रेम और त्याग तथा विवाह और सम्बन्ध-विच्छेद (Divorce)—इन दो समस्याओं को उठाया है और उनके समाधान में बताया है कि नारी का शाश्वत रूप प्रेम, त्याग, बलिदान और करुणा, ममता तथा कोमलता का रूप ही है किन्तु उसे अपने आत्मसम्मान की रक्षा के लिए भी सदैव सतर्क रहना चाहिये। पुरुष को नारी के प्रेम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आदि गुणों का सच्चा फल तभी मिल सकता है जब वह उसकी मर्यादा, आत्म-रक्षा एवं महिमा का ध्यान भी रखे। नारी-समस्याओं का यह समन्वयात्मक समाधान दे कर प्रसाद ने आधुनिक नारी को सम्यक् आलोक दिया है।

व्याख्या

प्रथम अङ्क

पृष्ठ ११

शब्दार्थ :—शिविर—सैनिकों के ठहरने का पड़ाव, डेरा। प्राचीर—परकोटा, चहारदीवारी। चन्द्रातप—चँदोवा, वितान।

पृष्ठ १२

शब्दार्थ :—प्रभुत्व—स्वामित्व। अभ्रभेदी—आकाश को भेदने वाला। शिखर—पहाड़ की चोटी। शैलमाला—पर्वत-श्रेणी, पहाड़ों की कतार। इन्द्रजाल—जादू, मायाजाल। अवरोध—अन्तःपुर।

"सीधा तना हुआ..............................चाहिये न !"

उद्धृत पंक्तियाँ ध्रुवस्वामिनी नाटक की हैं, जिसके लेखक श्री जयशंकर प्रसाद जी हैं। नाटक इन आरम्भिक पंक्तियों में ध्रुवस्वामिनी, जो इस नाटक की नायिका है, कहती है कि पर्वत का यह गगनचुम्बी शिखर अपनी प्रभुता और अधिकार के मद में सीधा तना हुआ, अकड़ता-सा कठोरता की साकार प्रतिमा बना हुआ है। और इस कठोर शिखर के चरणों पर ये तुच्छ कोमल दीन-हीन लताएँ लोटी हुई हैं। ठीक है। इन्हें तो लोटना ही चाहिये।

पर्वत का शिखर पुरुषों का प्रतीक है और निरीह लताएँ नारियों की। पर्वत के शिखर की भाँति ही पुरुष भी समाज द्वारा दिये गये अपने उन्मुक्त अधिकारों के मद में अकड़ता रहता है और कर्कशता तथा कठोरता से युक्त

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वह नारियों को अपने चरणों की सेविका मानता है। जिस प्रकार लताएँ—दुर्बल, कोमल, क्षीण और निरीह लताएँ पर्वत-शिखर के चरणों पर लोटने के लिए विवश हैं, उनकी अपनी सत्ता नहीं, अपनी शक्ति नहीं; ठीक उसी प्रकार अबला, निरीह नारियाँ भी कठोर-मदान्ध पुरुषों के चरणों पर दीन भाव से अपने जीवन का फूल समर्पित करती रहती हैं। इसके सिवा कोई अन्य चारा ही उनका नहीं है। पर्वत की भाँति कितने रुक्ष होते हैं ये पुरुष ! और, लताओं की भाँति कितनी निरीह होती हैं ये दुर्बल नारियाँ !

ध्रुवस्वामिनी स्वयं नारी है जो रामगुप्त से ब्याही गयी है। रामगुप्त के यहाँ उसे उपेक्षा, अपमान और अनादर मिलते हैं। अपने पति से अब तक उसे सम्भाषण करने का अवसर भी नहीं मिला है। उसकी वाणी पर नियंत्रण है। उसके हर आचरण पर विशेष दृष्टि रखी जाती है। रामगुप्त मद्य-मदिरा और नर्त्तकियों के बीच आनन्द की डुबकी लगाता है। बेचारी ध्रुवस्वामिनी की ओर देखने का उसे अवकाश या परवाह ही कहाँ ? उसी से वह व्यंग्यपूर्ण शब्दों में नारी या अपनी निरीहता और दीनता की तुलना निरीह लताओं से तथा पुरुष या रामगुप्त की कठोरता की तुलना प्रभुतापूर्ण गगनचुम्बी शिखर से करती है।

तुलना कीजिये :—

> "मैं जभी तोलने का करती उपचार स्वयं तुल जाती हूँ
> भुज-लता फँसा कर नर-तरु से झूले से झोंके खाती हूँ।"
>
> —प्रसाद : कामायनी

पृष्ठ १३

शब्दार्थ :—अनुग्रह—कृपा। अदृष्ट—भाग्य, नियति। स्वत्व—अधिकार।

पृष्ठ १४

शब्दार्थ :—निरभ्र—बादल-विहीन आकाश। प्राची—पूरब। बाल अरुण—प्रातःकालीन नवोदित बालसूर्य। वल्लरी—लता। काई—पानी की

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

घास जिसमें फिसलन होती है। विछलन—फिसलन। अवलम्ब—सहारा। अभ्युदय—उन्नति, वृद्धि। व्योम-विहारी—आकाश में विहार करने वाला।

वह निरभ्र प्राची का.................................पिसने दो।

प्रस्तुत पंक्तियों में ध्रुवस्वामिनी खड्ग-धारिणी से कहती है कि चन्द्रगुप्त को मैंने देखा था। वे बादल-विहीन पूर्व दिशा के आकाश में उगने वाले प्रातःकालीन बाल-रवि की भाँति आकर्षक और आँखों को प्रिय लगने वाले हैं। आज राज्य-चक्र दमन-चक्र बन कर उनको और उनकी ही भाँति हम निःशक्तों को पीसता है—क्योंकि हम दुर्बल और निस्सहाय हैं।

इन पंक्तियों के माध्यम से ध्रुवस्वामिनी जहाँ मेघविहीन नभ के बालारुण से चन्द्रगुप्त की उपमा दे कर उसके प्रति अपने अन्तर के अनुराग को प्रकट करती है तथा चन्द्रगुप्त की शक्ति, सौन्दर्य और तेजस्विता की ओर संकेत करती है वहीं उसकी और अपनी निस्सहायावस्था की कथा कह कर रामगुप्त की ओर से किये जाने वाले अत्याचारों के प्रति अपना विक्षोभ भी प्रकट करती है।

वह वल्लरी जो झरने के.................................अवलम्ब बन गयी है।

प्रस्तुत पंक्तियों में खड्ग-धारिणी ध्रुवस्वामिनी से कहती है कि झरने के निकट पहाड़ी पर चढ़ जाने वाली लता काई की जाति की है जो जल में उत्पन्न होती है। गंभीरता से देखने पर यह आसानी से जाना जा सकता है कि यही काई जब दुर्बल थी, पतली थी तो फिसलन से भरी थी। किसी का भी पाँव उस पर फिसल जा सकता था। किन्तु वही काई जब सुदृढ़ हो गयी है तो अब उसमें इतनी सामर्थ्य और शक्ति आ गयी है कि उसे पकड़ कर कोई भी व्यक्ति इस पहाड़ी पर चढ़ सकता है।

ठीक इसी काई की भाँति मनुष्य जब तक दुर्बल रहता है वह स्वयं तो कमजोर रहता ही है दूसरों को भी सहारा देने के बदले गिराता ही है। दुर्बल दूसरों की सहायता कर ही क्या सकता है। पर जब वही दुर्बल

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अपनी आत्मशक्ति को जगा लेता है तो दूसरों के प्रकर्ष और प्रगति का सहायक हो जाता है। वह दूसरे के उत्थान और उन्नति में सहायक होता है।

खड्ग-धारिणी के कहने का आशय यह है कि दुर्बल काई की भाँति जब तक चन्द्रगुप्त अपने को दुर्बल और निस्सहाय समझता रहेगा तब तक वह स्वयं राज्य-चक्र में तो पिसता ही रहेगा तुम्हारे उद्धार में भी सहायक नहीं हो सकता है। यदि वह प्राची के बाल-अरुण की भाँति निरन्तर अपने तेज को बढ़ाता चले, अपने में प्रभूत शक्ति संचय कर ले तो अपना और तुम्हारा, दोनों का इस क्लीव रामगुप्त के दमन-चक्र से उद्धार कर सकता है।

मनुष्य के हृदय में............'घुस आता है ?

इन पंक्तियों में ध्रुवस्वामिनी खड्ग-धारिणी से कहती है कि मनुष्य का हृदय सहज रूप से दैवी गुणों का निवास-स्थान है। करुणा, प्रेम, दया, ममता, क्षमा आदि जो दैवी गुण हैं तथा जो मनुष्य के देवत्व के लक्षण हैं वे मानव को सहज रूप में प्राप्त हैं। किन्तु पता नहीं कहाँ से मनुष्य के इन गुणों को विनष्ट कर दानवी गुण उसके हृदय में घर कर लेते हैं। कठोरता, कायरता, ईर्ष्या, दंभ इत्यादि दानवी गुण हैं। ये जब मनुष्य के कोमलता, दया एवं करुणा-ममतापूर्ण हृदय में प्रवेश कर जाते हैं तो मनुष्य केवल दानव रह जाता है।

कुमार चन्द्रगुप्त देवता हैं। उनका हृदय स्निग्ध, सरल और सुन्दर है। वीरता और कोमलता की उस प्रतिमूर्त्ति से कोई भी प्रेम कर सकता है। पर रामगुप्त ठीक इसके विपरीत कायर, क्लीव, नृशंस और कठोर है। अतः चन्द्रगुप्त जहाँ देवता हैं वहीं रामगुप्त राक्षस या दानव। ध्रुवस्वामिनी को आश्चर्य होता है कि जब देवत्व मनुष्य का सहज गुण है तो फिर मनुष्य राक्षसता या दानवता की ओर क्यों उन्मुख होता है। उसे तो देवता ही बना रहना चाहिये।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पृष्ठ १५

शब्दार्थ :—नीड़ों—घोंसलों। स्वर्ण-पिञ्जर—सोने का पिंजड़ा। भट्टारक—सम्राट् रामगुप्त। उत्तरीय—दुपट्टा या चादर। अमात्य—मंत्री।

पृष्ठ १६

शब्दार्थ :—गिरिपथ—पहाड़ी रास्ता। उद्वेलित—उत्थित, उठना।

जो स्त्री दूसरे के..........रहता होगा।

इन पंक्तियों में रामगुप्त प्रतिहारी से कहता है कि जो नारी पत्नी तो किसी की, अधिकार में तो हो किसी की किन्तु अनुराग किसी अन्य पुरुष से रखती हो, अपने प्रेम का पुष्प किसी दूसरे व्यक्ति के चरणों पर उत्सर्ग करती हो, निश्चय ही उसके हृदय में प्रेम की एक गहन और विस्तृत रस-लहरी उठती रहती होगी।

रामगुप्त के कहने का आशय है कि ध्रुवस्वामिनी तो है उसकी पत्नी, रहती है उसके अधीन किन्तु प्यार करती है चन्द्रगुप्त से। ऐसी स्थिति में उसके हृदय में अनुराग की एक तीव्र धारा जरूर उमड़ती होगी। इसी से ऐसी नारी कभी भी विश्वास के योग्य नहीं हो सकती। अवसर पाते ही वह अपने पति के विरुद्ध क्या कर बैठेगी इसका क्या ठिकाना?

पृष्ठ १७

शब्दार्थ :—प्रतिकूल—विरोध में। मेघ संकुल—बादलों से घिरा।

जिसकी भुजाओं में............कुछ होना चाहिये?

इन पंक्तियों में रामगुप्त शिखर स्वामी से कहता है कि जब किसी की भुजाओं में—बाँहों में—छाती में बल नहीं हो, शक्ति का अभाव हो तो उसे अपने बुद्धि-बल का ही सहारा लेना चाहिये। जो भुजबल से हीन है उसे बुद्धिबल यानी छल-प्रपंच, कूटनीति का सहारा शत्रु का या आपदाओं का सामना करना चाहिये।

रामगुप्त का दुर्ग शकराज की सेना द्वारा घेर लिया गया है। शिखर इसकी सूचना देता है। रामगुप्त जानता है कि उसमें इतना बल नहीं कि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वह अपनी सेना द्वारा शकराज से लोहा ले सके। अतः वह भुज-बल नहीं बुद्धि-बल का सहारा ले कर इसी युद्ध में सब झगड़ों का अन्तिम निर्णय कर लेना चाहता है। सब झगड़ों से उसका संकेत बाह्य और आन्तरिक यानी शकराज और ध्रुवस्वामिनी दोनों से चलने वाले द्वन्द्वों से मुक्ति की ओर है।

मेघ संकुल आकाश ....चमकना ही चाहिये।

जब शकराज के सन्धि-प्रस्ताव वाले पत्र को पढ़ कर भी, जिसमें शकराज द्वारा ध्रुवस्वामिनी की माँग की गयी थी, रामगुप्त आश्चर्यित या विक्षुब्ध नहीं होता बल्कि इस माँग को अपने अधिक प्रतिकूल नहीं बताता तथा यह कहता है कि इसकी संभावना उसे पहले से ही थी तो शिखर स्वामी को आश्चर्य होता है। उसे यह आशा नहीं थी कि रामगुप्त इतने अपमानजनक पत्र को पढ़ कर भी विक्षुब्ध नहीं होंगे। पर रामगुप्त का उत्तर सुन कर वह कह उठता है कि आपकी बुद्धि तो बड़ी प्रखर है। आपने निश्चय ही कोई-न-कोई उपाय ढूँढ़ निकाला होगा। और हो भी क्यों नहीं! जब आकाश मेघ से घिर जाता है और सर्वत्र अन्धकार ही अन्धकार छा जाता है तब बिजली चमक कर अपने आलोक से प्रकाश फैलाती है। ठीक इसी प्रकार जिसके भविष्य का आकाश विपत्तियों के बादल से घिर जाता है तब उसकी बुद्धि की बिजली ही अपनी प्रखरता से उसे मार्ग-दर्शन का आलोक दिखाती है।

शिखर स्वामी के कहने का आशय है कि रामगुप्त का भविष्य आपदाओं से घिरा है तब उसकी प्रखर बुद्धि उसका मार्ग-दर्शन करने में समक्ष होगी ही।

पृष्ठ १८

सच है, वीरता जब...............धूल उड़ती है।

प्रस्तुत पंक्तियों में मन्दाकिनी कहती है कि जब किसी व्यक्ति के हृदय से वीरता, शक्ति और पराक्रम के भाव मिट जाते हैं, जब वह कायर और क्लीव हो जाता है तब वह कपटाचार, छल-छंद और राजनीतिक दाव-पेंच से अपने स्वार्थ की सिद्धि करने को तत्पर हो जाता है। जैसे किसी के दौड़ कर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भागने से उसके पदाघात से सड़कों पर धूल उड़ने लगती है उसी भाँति जब किसी के हृदय से वीरता भी भागती रहती है तो उसके पैरों से छल, कपट, राजनीतिक धूर्तता तथा कूटनीतिज्ञता की धूल उड़ने लगती है।

शकराज द्वारा भेजे गये संधि-प्रस्ताव को जब रामगुप्त स्वीकार कर लेता है तथा ध्रुवस्वामिनी को इसलिए शक-शिविर में भेजने को तैयार हो जाता है कि उसके जाने से एक साथ ही भीतरी और बाहरी शत्रु परास्त हो जायँगे; यानी चन्द्रगुप्त और ध्रुवस्वामिनी जो सदैव उसके विरुद्ध रह कर आपस में प्रेम करते हैं उनका विनाश तो हो ही जायगा तथा शकराज से संधि हो कर युद्ध भी टल जायगा; तो मन्दाकिनी यह जान कर क्षुब्ध हो जाती है। वह सोचने लगती है कि रामगुप्त और उसके मंत्री कितने बड़े मूर्ख हैं कि अपने क्षुद्र और संकीर्ण स्वार्थों की पूर्त्ति के लिए मानापमान का बिना ख्याल किये गुप्त कुल और साम्राज्य के गौरव तथा मर्यादा का संहार करने को तुल गये हैं। जहाँ उन्हें वीरता से सैन्य-संघटन कर शकराज का सामना कर उसे परास्त करना चाहिये था जिससे यश और गौरव दोनों की रक्षा हो जाती वहाँ कायर और कापुरुष की भाँति राज-महिषी को भेज कर निर्लज्ज की भाँति ये संधि करने को तत्पर हो गये हैं। और, इसी में वे अपनी राजनीतिज्ञता तथा कूटनीतिक चातुरी समझते हैं। उनका यह आचरण तो उसी व्यक्ति-सा है जो वीरता से विहीन हो कर छल-कपट का सहारा ले कर अपने स्वार्थ की सिद्धि चाहता है।

पृष्ठ १९

शब्दार्थ :— आवरण—पर्दा। विस्मृति में अपने को छिपा लूँ—इन सारी बातों को भूला दूँ। कसक—व्यथा। नीरव गाथा—मौन कथा।

पृष्ठ २०

शब्दार्थ :—मंत्रणा—विचार। हिमाचल—हिमालय पर्वत, यहाँ कूबड़ की ऊँचाई की ओर संकेत है। दिग्विजय—विश्व-विजय। नलकूबर—कुबेर का एक पुत्र। मोर्छल—मोरपंख का बड़ा-सा पंख। उर्वशी और रम्भा—स्वर्ग की परियाँ। अभिसार—मिलन। शुभ मुहूर्त्त—मांगलिक घड़ी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पृष्ठ २१

शब्दार्थ :—पटा घुमाना—तलवारों का भाँजना।

वामन के बलि विजय ·······सीधा कर सकता हूँ।

एक बार राजा बलि के दान-पुण्य से आतंकित इन्द्र की प्रार्थना पर विष्णु ने बावन अंगुल का शरीर धारण कर राजा बलि से तीन डेग वसुधा की याचना की। बलि तैयार हो गये। वामन ने दो ही डेग में सारी धरती माप ली। तीसरे डेग के लिए बलि ने अपना शरीर ही नपा दिया।

बौना के कहने का आशय यह है कि जैसे वामन ने बलि की विजय की, जिसकी कथा सर्वविदित ही है, उसी प्रकार मैं भी छोटा हुआ तो क्या हुआ, अपनी तीन लातों से ही कुबड़े का कूबड़ सीधा कर उसे गलित गर्व कर सकता हूँ।

पृष्ठ २२

शब्दार्थ :—अचल हेमकूट—हिमालय की उत्तर दिशा के एक पर्वत का नाम। बर्बर—असभ्य, जङ्गली।

पृष्ठ २३

शब्दार्थ :—अशिष्ट—सभ्यता-विहीन। याचना—माँग। अवध्य—जो वध करने योग्य न हो। सम्भाषण—वार्तालाप। सम्प्रदान—दान देना।

पृष्ठ २४

शब्दार्थ :—द्राक्षासव—अंगूर की मदिरा। विसर्जन—परित्याग करना।

पृष्ठ २५

शब्दार्थ :—नीतिशास्त्र का बृहस्पति—बृहस्पति की भाँति नीतिशास्त्र में पारंगत।

मैं केवल···············बेंच भी नहीं सकते हो।

प्रस्तुत पंक्तियों में नारी-चेतना और नारी-जागरण का विद्रोहात्मक स्वर ध्रुवस्वामिनी के मुँह से मुखर हो उठा है। जब रामगुप्त शकराज के संधि-प्रस्ताव को स्वीकार कर ध्रुवस्वामिनी को, बिना अपनी मर्यादा के हनन का ख्याल किये हुए, शक-शिविर में भेजने को तैयार हो जाता है तथा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शिखर स्वामी की इस राय-को मान लेता है कि राष्ट्र की रक्षा में राजा-रानी सबका विसर्जन किया जा सकता है तो ध्रुवस्वामिनी का नारीत्व फुफकार कर उठता है। वह आक्रोश से भर कर रामगुप्त से कहती है कि पुरुषों ने नारियों को युग-युग से पशु की भाँति अपनी सम्पत्ति समझ कर उठा पर अत्याचार और अन्याय करने की आदत-सी बना ली है। वे अपने को नारियों का स्वामी, शासक या अधिकारी समझते हैं तथा नारियों को अपनी दासी या अधिकार समझते हैं। फलतः वे दमन की चक्की में उन्हें पीसते रहते हैं। ध्रुवस्वामिनी कहती है कि यह उसके साथ नहीं चल सकता है। यदि रामगुप्त में इतनी शक्ति और विवेक नहीं है कि वह अपने कुल की प्रतिष्ठा तथा अपनी पत्नी की आत्म-मर्यादा की सुरक्षा नहीं कर सके तो ध्रुवस्वामिनी को पर-पुरुष के हाथ अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए बेचने का अधिकार भी नहीं है। तुलना कीजिये :—

तुम भूल गये पुरुषत्व मोह में कुछ सत्ता है नारी की
समरसता है सम्बन्ध बनी अधिकार और अधिकारी की।

—प्रसाद : कामायनी।

पृष्ठ २६

शब्दार्थ :—प्राणों का प्रण—प्राणों की बाजी। अमूल्य—मूल्यवान्।

तुम सुन्दर हो ………डुबा नहीं सकता।

जैसे कटार चाहे सोने की ही क्यों नहीं बनी हो उसकी तीखी धार के कारण उसे कोई भी व्यक्ति अपने सीने से लगा कर मृत्यु-मुख में जाना नहीं पसन्द करता, उसे अपनी छाती से लगा या चुभा नहीं सकता ठीक उसी प्रकार कोई नारी कितनी भी सुन्दरी क्यों न हो उसके आलिंगन से यदि आपदाएँ आ सकती हैं तो होशियार व्यक्ति उसकी सुन्दरता पर मुग्ध हो कर उसे अपना नहीं सकता।

इन पंक्तियों में रामगुप्त ध्रुवस्वामिनी से कहता है कि जैसे अपने प्राणों से मोह रखने वाला व्यक्ति जैसे सोने की कटार पर मुग्ध हो कर उसे छाती से

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नहीं लगाता वैसे ही तुम्हारी सुन्दरता और अमूल्य नारीत्व पर मुग्ध हो कर उसकी रक्षा के लिए मैं अपने प्राणों की बाजी नहीं लगा सकता हूँ।

राज्य और सम्पत्ति..................फिर नहीं मिलता।

ध्रुवस्वामिनी के अनुनय, विनय के पश्चात् भी जब रामगुप्त उसे शक-शिविर में भेजने से मुकरता नहीं है तो वह पुनः कहती है कि किसी भी राजा को राज्य रहने पर तथा किसी भी पुरुष को सम्पत्ति रहने पर अनेक रानियाँ या स्त्रियाँ प्राप्त हो सकती हैं पर व्यक्ति का मान या प्रतिष्ठा नष्ट हो जाने पर वह दुबारे नहीं लौट आती। यानी धन-वैभव से अनेक रमणियाँ प्राप्त हो सकती हैं पर खोया हुआ गौरव नहीं प्राप्त हो सकता। रामगुप्त धन-वैभव की रक्षा के लिए, राज्य की रक्षा के लिए आज अपनी प्रतिष्ठा और मान को ही बेच लेना चाहता है। ध्रुवस्वामिनी कहती है कि उसे ऐसा नहीं कर धन या राज्य की अपेक्षा अपने कुल-गौरव की रक्षा करनी चाहिये।

पृष्ठ २७

शब्दार्थ :—मद्यप—शराबी। क्लीव—नपुंसक। लालिमा—लाली। उष्ण—गर्म।

मैं उपहार में देने..................ज्योति है।

जब शकराज का अपमानजनक संधि-प्रस्ताव मान कर रामगुप्त ध्रुवस्वामिनी को उपहार की वस्तु कह कर उसके पास भेजने को दृढ़ हो जाता है तो कुचली हुई नागिन की भाँति आक्रोश से फुफकार करती हुई विद्रोह की वाणी में ध्रुवस्वामिनी रामगुप्त से कहती है कि मैं वह शीतलमणि की भाँति उपहार में देने वाली जड़ वस्तु नहीं हूँ। मुझमें पूर्ण चेतना है। मेरा नारीत्व अपने आत्मसम्मान की रक्षा में अभी सबल और सतर्क है। मेरे शरीर में रक्त की लाली तरलायित हो रही है। मेरे हृदय की गर्मी अभी अक्षुण्ण है। मेरी नसों में उष्ण रक्त का संचार हो रहा है और आत्म-सम्मान की भावना अब भी प्रदीप्त है। मेरे सतीत्व, शील और नारीत्व का अपहरण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कोई अपर पुरुष कर ले यह मेरे जीते-जी नहीं हो सकता। मैं अपने शील की रक्षा करने में स्वयं समर्थ हूँ।

मुझे अपने अपमान में..................ढक लेने दो।

ध्रुवस्वामिनी जब अपनी शील-रक्षा के लिए कटार निकाल कर आत्म-हत्या करना चाहती है तभी चन्द्रगुप्त हत्या, हत्या के शोर सुन कर वहाँ उपस्थित हो जाता है और ध्रुवस्वामिनी से ठहरने कहता है। उस समय चन्द्रगुप्त को सकरुण नेत्रों से देख कर उससे वह कहती है कि अच्छा होगा कि तुम यहाँ से चले जाओ। वह उससे विनती के स्वर में कहती है कि आज मैं घोर अपमान में पड़ी हुई हूँ। जैसे वसन-विहीन नारी को देखने का अधिकार किसी पुरुष को नहीं है उसी प्रकार ध्रुवस्वामिनी के शील और मान का वस्त्र अभी हटा दिया गया है। वह अपमान, भयंकर अपमान से मर्यादाविहीन हो गयी है। उसकी लज्जा लुट गयी है। ऐसी स्थिति में उसे अपमानित अवस्था में देखने का अधिकार भी चन्द्रगुप्त को नहीं है। वह अपनी मानहीनता की नग्नता को मृत्यु की चादर से ढक देना चाहती है। यानी मर कर ही अपनी मर्यादा और शील की रक्षा करना ही उसके लिए शेष रह गया है। इसलिए वह उससे अनुरोध करती है कि वह उसे आत्म-हत्या कर मृत्यु के वसन से उसे अपनी लज्जा की रक्षा कर लेने दे। उसमें किसी प्रकार का व्यवधान न उपस्थित करे।

पृष्ठ २८

शब्दार्थ :—विकासोन्मुख कुसुम—खिलता हुआ फूल। छिन्नमस्ता—जिसका मस्तक कटा हुआ हो, महाविद्याओं में से एक। शिविका—पालकी। अवरोध—रुकावट।

यह तीखी छुरी.................अपना नहीं है।

ध्रुवस्वामिनी को आत्महत्या के लिए तत्पर देख जब चन्द्रगुप्त उसे इस कार्य से रोकता है तो वह कहती है कि "तुम्हारे आने से मैं कुछ देर रुक कर इस प्रश्न पर विचार करूँगी कि मुझे आत्महत्या करना चाहिये या नहीं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मेरा हृदय अभी अतृप्त है। जीवन की सकल कामनाएँ और लालसाएँ अभी तृप्त नहीं हो पायीं। अविकसित या अर्द्धप्रस्फुटित कुसुम की तरह ही मेरा हृदय भी है। जिस प्रकार विकसने के पहले ही किसी फूल को कोई विष-कीट अपने डंक से क्षत-विक्षत कर देता है उसी प्रकार अतृप्त लालसाओं से भरे जीवन को उनकी पूर्त्ति के पहले ही मैं तीखी छुरी चुभा कर नष्ट कर दूँ या नहीं, मुझे इस पर विचार करना पड़ेगा। किन्तु, यदि मैं आत्म-हत्या न करूँ तो फिर दुर्दशाग्रस्त मेरे इस जीवन का फल क्या कुछ और है? आत्महत्या के अतिरिक्त और चारा ही क्या है? यदि नहीं तो क्या मैं सारा जीवन यह भार ढोती रहूँ कि किसी अभिमान भरे व्यक्ति की कृपा से ही मेरा जीवन व्यतीत होता है? 'क्या विधाता का यही नियम है? क्या मेरा जीवन भाग्य के इशारे पर ही चलेगा? तब तो ऐसा लगता है मानों अपने ही जीवन पर मेरा अपना ही अधिकार नहीं।

देवी जीवन विश्व की .... ठीक तो नहीं।

मानव-जीवन विश्व की वर-विभूति है। इसलिए मनुष्य का अपने जीवन पर इतना अधिकार नहीं कि वह जब चाहे इसका अंत कर ले। मनुष्य को अपनी हत्या करने का कोई अधिकार नहीं, क्योंकि उसका जीवन मात्र उसी का नहीं वरन् सम्पूर्ण संसार की सम्पत्ति है। वह अपने जीवन से निखिल संसार का कल्याण कर सकता है। इसलिए उस पर विश्व का अधिकार है। ऐसे जीवन को उन्माद, क्षणिक आवेश या दुःख की पीड़ाओं से अकुला कर समाप्त कर देना कभी उचित नहीं।

इन पंक्तियों में चन्द्रगुप्त ध्रुवस्वामिनी को आत्म-हत्या करने के लिए उद्यत देख कर उससे कहता है कि जीवन पर किसी एक व्यक्ति का ऐसा स्वच्छन्द अधिकार नहीं कि वह मनचाहा उसका अन्त कर ले। वह विश्व की सम्पत्ति होता है। अतः उन्माद या पीड़ाकुल हो कर उसे नष्ट नहीं कर देना चाहिये। फिर आप तो गुप्त-कुल की लक्ष्मी हैं। आपके लिए छिन्नमस्ता देवी की भाँति अपना मस्तक छिन्न करने के लिए आरूढ़ होना उपयुक्त और शोभाजनक तो नहीं है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पृष्ठ २६

शब्दार्थ :—अज्ञात भाव से—अनजाने। आलोक—प्रकाश। कलुष—पाप। अविचल—निश्चल।

ऐसा विनय............ घोषणा करता है।

शिखर स्वामी द्वारा चन्द्रगुप्त को विनय रखने का स्मरण दिलाने पर चन्द्रगुप्त कहता है कि विनय दोनों ओर से जब होती है तभी सच्ची विनय कहाती है। शिष्टता और शील के अभाव में बाहरी मीठापन विनय नहीं कहा जा सकता। इस प्रकार की विनम्रता, जिसमें हृदय में कपट-कटारी रख कर और बाहर से चिकनी-चुपड़ी बातें की जायँ, छलियों और प्रवंचकों के छल-कपट को छिपाने का साधन है। वस्तुतः जिसमें शील, सद्भावना और शिष्टता हो वही विनयी कहा जा सकता है। शीलता-शालीनतापूर्वक व्यवहार या आचरण उसी से किया जा सकता है जो स्वयं भी शीलवान् हो। कायरों और क्लीवों से विनयपूर्ण आचरण कैसा?

पृष्ठ ३०—३१

शब्दार्थ :—कलंक-कालिमा—पापपूर्ण दोषों की कालिख। कारागृह—बन्दी-गृह। वसुधा—पृथ्वी। नियति—भाग्य। क्षितिज—आकाश और पृथ्वी का संधि-स्थल। निर्जन—एकान्त। अर्गला—साँकल। अन्तरंग—हृदय। निर्वासन—निकालना। गह्वर—गृह।

मुझे कलंक-कालिमा ....तत्पर है।

रामगुप्त ने जब ध्रुवस्वामिनी पर यह कलंकपूर्ण दोषारोपण किया कि उसका चन्द्रगुप्त से अनुचित और गुप्त-प्रेम आज प्रकट हो गया है, जिसकी आशंका उसे पहले से थी तो ध्रुवस्वामिनी ने भर्त्सनापूर्ण शब्दों में ललकारती हुई उसे कहा कि अरे असभ्य, निष्ठुर! तुम कलंकों का लाख दोषारोपण मुझ पर कर के मुझे अपमानों के बन्दी-गृह में क्यों न डाल दो, मर्मविदारक वाक्यों से मुझ पर प्रहार क्यों न करो, किन्तु मैं तुम्हारे दम घोंटने वाले वाक्यों से तिलमिला कर अब अपना प्राणान्त नहीं करूँगी। आज मैं निस्सहाय हूँ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किन्तु मेरी दुर्बलता ही मुझे असीम शक्ति प्रदान कर रही है और उसी शक्ति से मैं चन्द्रगुप्त के प्रेम का पीयूष पान कर वह जीवन व्यतीत करने को सहर्ष तत्पर हूँ जिसे तुम लज्जाजनक कहते हो।

कितना अनुभूतिपूर्ण .... मिला दिया हो।

इन पंक्तियों में ध्रुवस्वामिनी चन्द्रगुप्त के आलिंगन और सुखद स्पर्श का स्मरण करती हुई कहती है कि उसका वह क्षणिक आलिंगन कितना सुखदायक और आह्लादकर था। कितनी कोमल मंजुल अनुभूतियाँ उस मादक स्पर्श में थीं! जिस प्रकार सूर्य की प्रचंड-तीव्र किरणों से जली हुई जेठ की धरती संध्या के शीतल आकाश से क्षितिज के एकान्त स्थल पर मिल कर पुलकित और आह्लादित हो उठती है, उसका सारा ताप मिट जाता है उसी प्रकार चन्द्रगुप्त के सुखद आलिंगन ने मेरे जलते हुए जीवन में एक मादक शीतलता बिखेर दी। लगता है भाग्य ने अनजाने में मुझ पर यह विशेष कृपा की हो।

जिस वायु-विहीन .... सुरक्षित करा लूँगी।

ये पंक्तियाँ ध्रुवस्वामिनी द्वारा कथित हैं। वह कहती है कि जिस प्रकार वायु-विहीन स्थल में मनुष्य का दम घुटने लगता है तथा साँसों पर बन्धन या साँकल डाल देने से मनुष्य का प्राणान्त होने लगता है ठीक उसी प्रकार रामगुप्त के अन्तःपुर में, प्रेम-विहीन वातावरण में मेरा दम घुटने लगा था। मेरी साँसों पर नियंत्रण था। मेरे हर आचरण पर शंका-भरी दृष्टि डाली जाती थी। मेरी स्वच्छन्दता विनष्ट हो चुकी थी। चरणों में नियंत्रण की अर्गला या शृंखला डाल दी गयी थी। सारा जीवन ही असह्य हो उठा था। किन्तु, तो भी मैं अब मरना नहीं चाहती। चन्द्रगुप्त के आने से उसके अनुरागपूर्ण आलिंगन से जीवन में जीने की कामना बलवती हो उठी है। अब मैं ईश्वर से प्रार्थना करूँगी कि वह मुझे इस जगत् में कुछ और दिनों तक जीवन धारण करने की अनुमति दे ताकि प्रेम का पराग मैं पी सकूँ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ओह, इस वक्षःस्थल में·····················कहला देता है ?

इन पंक्तियों में चन्द्रगुप्त के प्रेम में सराबोर तथा उसके उपकार एवं स्नेह की वर्षा से भींगी हुई ध्रुवस्वामिनी अपने हृदय में छिड़ने वाले प्रणय-द्वन्द्व की चर्चा करती हुई कहती है कि ओह! लगता है जैसे इस हृदय के बीच दो हृदय हों। जब आन्तरिक हृदय चन्द्रगुप्त के प्रेमाकर्षण से खिंच कर उसके प्रेम को स्वीकार करना चाहता है तभी ऊपरी मन, एक हलका कर्त्तव्य-विचार झटका-सा दे देता है और उससे प्रेम करने की मनाही देता है। पता नहीं ऐसा क्यों होता है? मेरे हृदय में यह द्वन्द्व क्योंकर आखिर छिड़ा हुआ है।

द्वितीय अङ्क

पृष्ठ ३४

उन्हें सींचना पड़ता है·····················इन्हें बल नहीं।

कोमा शकराज की अनुरागिनी है। किन्तु, शकराज उसके प्रेम के प्रतिदान में अपमान, अनादर और उपेक्षा देता है। वह खिन्न मन से आँगन की क्यारियों में फूलों से लदी लताओं और पौधों को देख कर कहती है कि इन पौधों और लताओं को सींचने की आवश्यकता होती है। जल-सिंचन करते रहने से इनकी हरीतिमा और सौन्दर्य बने रहते हैं। इसके अभाव में इनमें रूखापन और मैलापन आ जाता है। आज भी जल-सिंचन के अभाव में इनके पत्ते धूल-धूसरित हो रहे हैं। इनके फूल मात्र कलिका बन कर रह गये हैं। जैसे इन्हें पूर्णरूपेण सुविकसित और प्रस्फुटित होने की क्षमता ही नहीं। ये अपने प्राणों की खुशियाली भी व्यक्त नहीं कर सकते।

कोमा के कथन का आशय यह है कि जैसे जल-सिंचन के अभाव में, सतर्कता के अभाव में लताएँ और पौधे अपना सौन्दर्य खो बैठते हैं; उनमें म्लानता और रुक्षता आ जाती है तथा उपेक्षा के कारण उनके फूल पूर्ण प्रस्फुटित नहीं हो पाते वैसे ही नारी की हृदय-लता भी प्रेम के जल-फुहारे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के अभाव में मुरझा-सी जाती है। उसका अन्तर कोमल होता है और प्रेम की फुहार से ही उसे हरा-भरा रखा जा सकता है। प्रेम के जल से भींग कर ही उसके हृदय की कलिका खिलखिला उठती है और उसके सौन्दर्य की चमक में निखार आ पाता है। उपेक्षा, तिरस्कार और अपमान तो उसके जीवन को शुष्क, नीरस और म्लान बना देते हैं।

पृष्ठ ३५

वसन्त का उदास ... ... जीवन नहीं है।

कोमा जिसका हृदय अनुराग की आग में दग्ध हो रहा है किन्तु उसे अपने प्रियतम की प्रीत का नवनीत मिल नहीं पाता, प्यार की फुहार झड़ नहीं पाती, खिन्नमना हो कर भरे वसन्त में सोचती है कि जब वसन्त के आते ही सोयी कोयल कुहुकने लगती है, कलियाँ चटखने लगती हैं, तितलियाँ नृत्य करने लगती हैं; भौंरे गुंजार करने लगते हैं और मलय पवन फूलों का प्रीत-पराग अग-जग में बिखेरने लगता है तब आखिर मनुष्य के प्राण उस वसन्त के स्पर्श से क्यों नहीं गुदगुदा पाते? यहाँ तो सभी रक्त के प्यासे, प्राण लेने और देने में पागल बने हुए हैं। वे वसन्त की मादकता का अनुमान ही नहीं कर पाते। किन्तु वास्तविक जीवन तो ऐसा नहीं है। जीवन तो वसन्त का ही दूसरा नाम है। जीवन तो वह है जिसमें उमंग हो, उल्लास हो, हास-मधुमास हो, आनन्द-अनुराग हो। प्रेम की मदिरा पी कर जिसका जीवन खिलखिला नहीं उठा उसका जीवन क्या? किन्तु हिंसा पर उतारू, रक्तपिपासु, जघन्य और निन्द्य कर्म करने वाले जीवन के इस उल्लास का उपभोग कहाँ से कर सकते? निश्चय ही यह सच्चे जीवन की पहचान नहीं है।

तुलना कीजिये—

"सूखे तरु के पत्र! तुम्हारी आकुलता मुझको न सताती
हँस-हँस कर वसंत रह जाता, सिसक-सिसक बरसा रह जाती।"

—आरसी प्रसाद सिंह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रणय, प्रेम !……… …… ……अस्पष्ट हो जाती हैं।

इन पंक्तियों में कोमा कहती है कि जैसे आँखों के आगे कहीं से प्रकाश की बाढ़ (Flood light) उड़ेल दी जाय तो आँखें चौंधिया जाती हैं; कुछ सूझता नहीं, सामने की वस्तुएँ भी नहीं दीख पड़तीं, केवल प्रकाश ही प्रकाश दीख पड़ता है वैसे ही, जब आँखों में किसी के प्रेम का प्रकाश-पुञ्ज उमड़ता है तब प्रेम के अतिरिक्त और कुछ दिखाई ही नहीं पड़ता। जैसे प्रकाश की बाढ़ में आँखों का नैसर्गिक प्रकाश काम नहीं करता जिससे आगे की राह स्पष्ट सूझ पड़े, केवल बाहरी रोशनी ही दिखाई पड़ती है वैसे ही प्रेम के प्रकाश में प्रेमी अपने विवेक और ज्ञान-बुद्धि का आलोक खो देता है, उसे उचित-अनुचित, विवेक-अविवेक का अन्तर नहीं मालूम हो पाता तथा केवल प्रेम या प्रेम-पात्र ही दिखाई पड़ता है। प्रेमी भविष्य के फलाफल को नहीं देख कर विवेकहीन बन ऐसी अचूक भूलें कर बैठता है कि उसे जीवन भर दुःख उठाना पड़ता है। फिर भी वह प्रेम के प्रकाश में सब कुछ खो देने को कितना विवश रहता है। कोमा से भी भूल हो गयी है। शकराज उसे प्रेम नहीं करता। पर, प्रेम में वह और कुछ देख कहाँ पाती है। चाहे पागलपन कहिये या भूल, उसे चाहे दुःख मिले या उपेक्षा वह तो उसे प्रेम करने को विवश है।

प्रेम करने की एक ……… ……मूर्ख बनते हैं।

अनुरागिनी कोमा कहती है कि प्रेम करने की भी एक घड़ी होती है, एक अवस्था होती है, एक काल-विशेष होता है। जैसे वसन्त वर्ष भर में एक ही बार आता है, वह भी निर्धारित समय में ही, वैसे ही जीवन-वन में वसन्त की भाँति किसी रजनी के पिछले पहरों में प्रेम का भी आगमन हो जाता है। तब मन की कलिका चटखने लगती है और अनुराग के पराग से बेसुध बना हृदय सब कुछ भूल जाता है। ऐसी स्थिति में जो यह तर्क करने लगते हैं कि प्रेम का क्या परिणाम होगा, और परिणाम की भयंकरता को सोच-सोच कर जो प्रेम की सँकरी गली में सँभल-सँभल कर पाँव रखना चाहते हैं तथा जो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रेम की ऋतु में भी प्रेम करने से चूक जाते हैं उन्हें संसार के कुशल चतुर लोग मूर्ख समझते हैं। ऐसी स्थिति में कोमा अपने से ही प्रश्न करती है कि "कोमा, तब तू किसे अच्छा समझती है—प्रेम में चूक कर प्रेम नहीं करने को या प्रेम करने पर फूँक-फूँक कर चलने को।" जब दोनों ही स्थितियों में लोग मूर्ख ही कहाते हैं तो कोमा प्रेम करना ही अच्छा समझती है चाहे परिणाम जो भी हो। लोग उसे पागल कह लें या भ्रमित। परिणाम प्रेम का दुःख ही क्यों न हो, वह तो प्रेम करेगी ही।

वस्तुतः प्रेम में तर्क की गुंजाइश नहीं रहती। तर्क की किरण के लगते ही प्रेम की मादक रजनी फटने लगती है। ऐसी स्थिति में फलाफल का विचार किये बिना प्रेम में निमज्जित हो जाना ही उपयुक्त है। वर्त्तमान का आलोक भविष्य के अंधकार को देखने नहीं देता है। वैसे ही प्रेम का प्रकाश दुःख के परिणाम को देखने नहीं देता।

तुलना कीजिये :—

'तंत्री नाद कवित्त रस सरस राग रतिरंग
अनबूड़े बूड़े तिरे जे बूड़े सब अंग'

— बिहारी।

पृष्ठ ३६

शब्दार्थ :—स्निग्ध—कोमल। दुर्भावनाओं—बुरी भावनाओं। नियामक—विधाता।

प्रश्न स्वयं किसी के .... महाराज!

जब शकराज ने कोमा से अपनी दुर्भावनाओं और जीवन-मरण के प्रश्न की चर्चा की तो कोमा ने उत्तर दिया कि प्रश्न स्वतः किसी के सामने नहीं आ जाते। समस्याएँ स्वयं किसी के सम्मुख नहीं आ उपस्थित होती हैं। उन्हें तो हम हैं जो बुलाते हैं, आमंत्रण देते हैं; अपने लिए उपयोगी या हितकर मान कर, अपने स्वार्थों की सिद्धि के लिए। जिस प्रकार मकड़ी अपनी सुरक्षा के लिए, अपने जीवन को आधार प्रदान करने के लिए अपने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चारों ओर जाल तो फैला देती है किन्तु स्वयं उस जाल में लटक जाती है, अपने ही द्वारा निर्मित विषैले तन्तुओं के जाल में फँस जाती है, घिर जाती है उसी प्रकार मनुष्य भी अपने स्वार्थों की रक्षा के लिए, अपनी शक्ति, सत्ता या प्रभुता की दृढ़ता के लिए नयी-नयी समस्याएँ खड़ी कर लेता है। युद्ध, संघर्ष, दमन, छल-प्रपंच इत्यादि लोग इसीलिए करते हैं। किन्तु अपने स्वार्थ-साधन के लिए खड़ी की गयी इन समस्याओं के जाल में मनुष्य स्वयं मकड़ी की भाँति लटक जाता है। उसे दुश्चिन्ताएँ और दुर्भावनाएँ घेर लेती हैं। उसकी मानसिक शान्ति लुट जाती है, चैन खो जाता है। अशान्ति का अन्धकार उसकी प्रसन्नता के प्रकाश पर हावी हो जाता है। कोमा कहती है कि सही अर्थ में मनुष्य के जीवन को मंगलमय और सौभाग्यपूर्ण बनाने वाली तो वह प्रसन्नता की लता है जो यौवन के उल्लास से फैलती है तथा आनन्द की अंगूरी से मन को विभोर कर जाती है। यौवन का यह सहज उल्लास ही हमारे जीवन को मंगलमय बनाता है। मनुष्य को इसकी ओर से कदापि उदासीन नहीं होना चाहिये।

सौभाग्य और दुर्भाग्य··· ···खींच लाता है।

इन पंक्तियों में शकराज कोमा से कहता है कि सौभाग्य और दुर्भाग्य कमजोर व्यक्तियों के भय के परिणाम हैं। यह तो मनुष्य का पौरुष है, कर्त्तव्य है, सुकर्म है जिससे उसके जीवन में सौभाग्य की कंचन-किरणें प्रस्फुटित होती हैं। भाग्य तो कायरों का अस्त्र है। शकराज का विश्वास है कि मनुष्य ही अपने भाग्य का विधायक होता है, निर्माता होता है। जब मनुष्य के भीतर पुरुषार्थ का तेज जगता है तो सौभाग्य-सुन्दरी स्वतः उसके पीछे-पीछे चलने लगती है। भाग्य तो कर्म का किंकर है, अनुचर है। शकराज भाग्यवादी नहीं। उसे नियति, भाग्य या अदृश्य पर विश्वास नहीं। उसकी एकमात्र भुजबल, पराक्रम और पुरुषार्थ पर आस्था है।

तुलना कीजिये :—

१. कादर मन कर एक अधारा।
दैव दैव आलसी पुकारा॥ —तुलसी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२. शक्तिशाली हो विजयी बनो
विश्व में गूँज रहा जय गान—प्रसाद
३. Man is the architect of his own destiny.
४. खुदी को कर बुलन्द इतना कि हर तकदीर के पहले
खुदा बन्दे से यह पूछे, बता तेरी रज़ा क्या है ?

पृष्ठ ३७

शब्दार्थ :—अभावमयी— अल्पतापूर्ण। लघुता—छोटाई। पाषाणी—पत्थर की प्रतिमा।

अभावमयी लघुता ....क्या अच्छा नहीं है ?

शकराज जब कोमा की इस राय की, कि अपने से महान् के सम्मुख थोड़ा-सा विनीत बन कर वह उपद्रव से मुक्त रह सकते थे, अवहेलना करता हुआ दंभ से कहता है कि यह उससे नहीं हो सकता तो कोमा कहती है कि मनुष्य स्वभावतः अभावमय और लघु है। वह अपूर्ण और छोटा है। पूर्ण और महान् तो एकमात्र ब्रह्म है। मनुष्य सदैव अपूर्ण है। इस अपूर्णता और लघुता से युक्त होने पर भी मनुष्य यह प्रदर्शन करने से बाज नहीं आता कि वह महत्ता से युक्त है, गौरवमय है। जैसे रंगमंच का नट क्षुद्र होने पर भी महान् पात्र का अभिनय करता है वैसे ही सृष्टि के रंगमंच पर मनुष्य अपनी क्षुद्रता और लघुता को भुलाये गौरव और दंभ से भर कर अविनीत बना महानता का प्रदर्शन करता है। अगर वह ऐसा प्रदर्शन नहीं करे तो वही उसके लिए कल्याणकर होगा।

पाषाणी ! ....वहती है।

जब शकराज कोमा को पाषाणी प्रतिमा कहता है तो वह कहती है कि हाँ, तुम मुझे पाषाणी कह लो। किन्तु प्रस्तर-खण्ड के भीतर ही शीतल जल की मधु-धारा प्रवाहित होती रहती है। पहाड़ की छाती के भीतर ही निर्झर का मधुर जल प्रवहमान होता रहता है, जो दग्ध और पिपासित हृदय की प्यास हर कर स्वर्गिक सुख प्रदान करता है। वैसे ही मैं पाषाणी हूँ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किन्तु मेरे हृदय में प्रेम की सात्विक प्रेम की शीतल मधु-धारा बहती है। इससे तुम्हारी आत्मा को सच्ची तृप्ति और शान्ति मिलेगी। इस प्रेम-वारि का पान कर तुम्हारे दग्ध प्राणों को शाश्वत परितृप्ति मिलेगी। हाँ, मेरे हृदय के निश्छल प्रेम-जल में वासना की फेनिल मदिरा की मादकता नहीं है जो तुम्हारी उद्दाम लालसाओं को क्षणिक तृप्ति के नाम पर और भी जाग्रत् कर दे और सदा पिपासा की मृग-मरीचिका में भटकाये रखे।

पृष्ठ ४०

शब्दार्थ :—तूर्यनाद—युद्ध के बाजे का स्वर। दुर्गतोरण—किले का फाटक। दयनीय—दयापूर्ण। मध्यस्थ—दो व्यक्तियों को मिलाने वाला।

भाग्य ने ···· ·······दयनीय दशा है।

ध्रुवस्वामिनी शक-शिविर में एकान्त में शकराज से मिलना चाहती है। यह संवाद खिंगल उसे सुनाता है। रानी को मर्यादा का ध्यान है। इस पर शकराज व्यंग्यपूर्ण शब्दों में कहता है कि भाग्य की विडम्बना से जिसे झुकना पड़ता है, दूसरे के सामने नतमस्तक होना पड़ता है ऐसे हतभाग्य व्यक्तियों को अपनी मर्यादा और प्रतिष्ठा का सर्वाधिक ध्यान रहता है। यह अवस्था निश्चय ही शोचनीय हो जाती है। ऐसे व्यक्तियों की यह दशा दया के योग्य होती है।

ध्रुवस्वामिनी एक गुप्त-साम्राज्य की राजमहिषी है। भाग्य की विडम्बना से उसे आज शकराज के विलास की सहचरी होने को बाध्य हो कर आना पड़ा है। ऐसी अवस्था में भी यदि वह मर्यादा का ख्याल करके एकान्त में ही मिलने का अनुनय करती है तो निश्चय ही वह दया के योग्य है। शकराज के कथन का यही अभिप्राय है।

पृष्ठ ४१

शब्दार्थ :—मधुर आलापों—मीठी बातों। शून्य—आकाश। मकरन्द—पराग।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

राजा, तुम्हारी स्नेह-सूचनाओं ...... भूल थी।

ध्रुवस्वामिनी के शक-शिविर में आने से कोमा को सहज प्रसन्नता नहीं हुई। शकराज उसकी भावनाशीलता के सम्बन्ध में पहले से इतना भिज्ञ नहीं था। अतः जब उसने पूछा कि तुम इतनी अनुभूतिमयी संवेदनाशील हो; इसका पता पहले से मुझे नहीं था तो कोमा से कहा कि हे राजा! मेरे रसहीन और निर्जन हृदय के आकाश में जिस दिन से आपके अनुराग की सूचना से स्वाभाविक प्रसन्नता और मीठी-मीठी प्यार-पुलकभरी बातों ने मधुर संगीत की सरसता, वसन्त की मोहकता और मकरन्द की मादकता भर दी है उसी दिन से मैं अनुभूतिशीला बन गयी हूँ। क्या यह मेरी भ्रांति या भूल थी? आप ही बतायें कि आपकी प्यार-भरी बातों पर विश्वास कर मैंने भूल की?

पृष्ठ ४२

शब्दार्थ :—दर्प-दलन—गर्व चूर करना। प्रमत्त—मतवाला। प्रतिपालिता—पोसी हुई। हस्तक्षेप—हाथ डालना, दखल देना।

राजनीति? ....व्यापक सम्बन्ध है।

ध्रुवस्वामिनी के शक-शिविर में आने से कोमा असंतुष्ट है। शकराज मिहिरदेव से कोमा की उदासी का कारण बताता है। मिहिरदेव कहते हैं कि उसका असंतोष ठीक ही है। वह तुम्हारी भावी पत्नी है। उसका स्नेह तोड़ना भयंकर परिणामदायक होगा। इस पर शकराज उनसे कहता है कि आप मेरे राजनीतिक कामों में दखल न दें तो अच्छा हो। इसी के उत्तर में इन पंक्तियों में मिहिरदेव कहते हैं कि मानव-जीवन में राजनीति ही सबसे अधिक महत्त्व की वस्तु नहीं है। राजनीति छल-कपट और प्रतिशोध की अग्नि-ज्वाला का नाम है। किन्तु, इस राजनीति से भी बढ़ कर महत्त्वपूर्ण वह प्रेम, स्नेह, दया, ममता, करुणा, क्षमा तथा श्रद्धा की विराट् या महान् आदर्श नीति है जिसका प्रगाढ़ सम्बन्ध निखिल मानव समुदाय से है। उस लोकनीति या प्रेमनीति से सम्बन्ध तोड़ कर राजनीति से गठबंधन किये रहना श्रेयस्कर नहीं। राजनीति का सम्बन्ध किसी एक व्यक्ति से या उसकी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

छाया में रहने वाले उसी की भाँति कुछ स्वार्थपूर्ण व्यक्तियों से है, पर इस लोक-नीति का तो व्यापक मानव-जगत् से सम्बन्ध है। शकराज से मिहिरदेव कहते हैं कि यह भले ही संभव है कि तुम राजनीतिक क्षुद्र कपटाचारों से, निन्द्यकर्मों से किंचित् सफलता प्राप्त कर अपने को क्षण भर के लिए नीतिज्ञ और चतुर समझने की भूल करने लगो, किंतु किसी के प्रेम की अवहेलना करना, किसी प्रेमपूर्ण हृदय को ठोकर मारना, किसी अनुरागिनी के अन्तस्तल में खिली प्रेम की अर्द्ध प्रस्फुटित कलिका को निष्ठुरता से मसल कर चल देना एक महा अपराध है। यह भयंकर हानिकारक कार्य है। क्योंकि दो प्यार करने वाले हृदय के बीच निश्छलता, त्याग, आत्म-समर्पण और भोलेपन की भावना छिपी रहती है। यह भावना स्वर्गीय ज्योति की भाँति पुण्य, पावन और दिव्य होती है। स्वर्गीय ज्योति का अपमान करना अहम्मन्यता का गंभीर प्रदर्शन नहीं तो और क्या है?

पृष्ठ ४३

शब्दार्थ :—विश्व-मानव—मानव-जगत्। व्यापक—गंभीर। छलनाओं—धोखों। स्वर्गीय ज्योति—दिव्य और पवित्र प्रकाश। प्रतारणा—ठगना। बहिरंग—बाहरी रूप। वल्लरी—लता।

प्रतारणा में बड़ा .... तोड़ डाल।

शकराज द्वारा निकल जाने का आदेश सुन कर मिहिरदेव व्यथित हो जाते हैं। वे अपनी प्रतिपालिता पुत्री कोमा से भी अपने साथ बाहर निकल चलने को कहते हैं। कोमा गीले कण्ठों से उन्हें पिताजी कह कर अपने हृदय के उद्वेलन को व्यक्त कर खड़ी-की-खड़ी रह जाती है। इस पर मिहिरदेव उसे सांत्वना देते हुए और समझाते हुए कहते हैं कि हमलोगों को इस कठोर शकराज के राज्य से दूर कहीं प्रकृति की शरण में चल देना चाहिये। लताएँ, वृक्ष और चट्टानें लोगों को छाया और सहानुभूति देती हैं। प्रकृति की छाया सदैव सुखद होती है। वहाँ विश्व के तापित, शापित और श्रान्त व्यक्तियों को सुख तथा सांत्वना का समीर मिलता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तृप्ति का जल और आनन्द की छाया मिलती है। पर शकराज तो चट्टान से भी कठोर और दंभपूर्ण है। तुम्हें अपने हृदय को सँभालना चाहिये। दुःख सहने को तत्पर हो जाना चाहिये। शकराज छली है। वह तुम्हारे निश्छल और प्रेमपूर्ण हृदय का मूल्यांकन नहीं कर तुम्हारा अपमान करता है। तुम उसके छलपूर्ण आचरण को प्यार समझ बैठी हो। ऐसा भ्रम होता ही है। क्योंकि छल का रूप बड़ा आकर्षक होता है। स्वभावतः ही उसके आकर्षण से मन में उस छलिये के छल के प्रति मोह उत्पन्न हो जाता है। उसे छोड़ने का, त्यागने का मन नहीं करता। छल का बाहरी रूप आकर्षक होता है और सुन्दर भी। छलिये की विनम्रता और भी मोहक होती है। किन्तु ये आकर्षण और विनय परिणाम में दुःखदायी होती हैं। सीधे-सादे निश्छल हृदय के लोग छलिये के छल-जाल में मछली की तरह फँस जाते हैं। फिर तो एक बार फँस जाने वाले लोगों को छली व्यक्ति की कठोरता का वैसा ही शिकार होना पड़ता है जैसे जाल में फँसने वाली मछली को मछुए की बर्छी का। अतः कोमा! तू अपने प्रेम-बन्धन को तोड़ फेंक। यही तेरे लिये हितकर है।

तोड़ डालूँ पिताजी ······· ·············आज्ञा न दो।

आचार्य मिहिरदेव के आदेश को सुन कर कोमा कहती है कि पिताजी! मैंने एक लता लगायी थी, आँसुओं के जल से बड़े प्यार और परिश्रम से सींच कर। वह लता फैल गयी। मैं आँख मूँद कर चलने लगी। फलतः वही लता मेरे पैरों से उलझ गयी है। मैं उसे क्या एक झटका दे कर तोड़ दूँ? क्या उसकी पत्तियों को कुचल दूँ? ऐसी आज्ञा न दीजिये।

कोमा के कथन का तात्पर्य यह है कि मैंने अपनी करुणा के जल से जिस प्रेम की लता को सींचा था वह फैल गयी। प्रेम की इस फैली लता के बीच मैं अन्धी-सी चलने लगी। (प्रेम में मनुष्य विवेक और ज्ञान खो ही देता है। इसी से प्रेम-जाल में वह आबद्ध हो जाता है।) फलतः आज मैं प्रेम की उस शृंखला में बँधी हूँ। शकराज के अपमान और उपेक्षा से क्षुब्ध

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हो कर क्या मैं अपनी प्रेमलता को एक झटके में तोड़ दूँ ? क्या मैं उससे अपना प्रेम-सम्बन्ध मिटा दूँ ? क्या हृदय की पत्तियों को कुचल दूँ ताकि वह छिन्न-भिन्न हो जाय ? यानी क्या इस कोमल हृदय को वज्राघात से टुकड़े-टुकड़े कर दूँ ? नहीं, नहीं; पिताजी ! ऐसी आज्ञा न दीजिये। इस प्रेम-लता के प्रति मेरी ममता है। इसमें एक दिन फूल और फल लग सकते हैं। फिर मैं कैसे तोड़ दूँ अपनी प्रेम-लता को ?

पृष्ठ ४४

शब्दार्थ :—अभिनय—नृत्य। लोहित—लाल। धूमकेतु—अमंगलजनक एक नक्षत्र। अविचल—स्थिर। अभिशाप—शाप। क्रूर—निष्ठुर। उच्छृंखल—उद्दंड। पर्यटक—घूमने वाला।

पृष्ठ ४५

शब्दार्थ :— दर्प से दीत—घमंड से पूर्ण आलोकित।

अपने तेज की..................भयभीत हो।

जब कोमा शक-शिविर से जाने लगती है तो शकराज अपने प्यार और स्नेह की याद दिलाता हुआ उसे जाने से रोकता है। ऐसी ही स्थिति में वह उत्तर देती है कि तुम प्रेम की बात न करो। वह तो एक व्यथा थी, दर्द था। अब वह समाप्त हो गया है। धीरे-धीरे उसकी याद की टीस भी समाप्त हो जायगी। मैं तुम्हारे पौरुषपूर्ण व्यक्तित्व, गौरव की ज्योति से दीपित मूर्त्ति पर आकृष्ट हुई थी। मैंने देखा था तुम अपनी दृढ़ता से आत्म-निर्भर हो धरती पर टिक सकते हो। मैं यह नहीं जानती थी कि तुम इतने बड़े पापी, कलुष और स्वार्थी तथा संकीर्ण हो। तुम्हारे तेज की अग्नि में वह शक्ति कहाँ रही कि तुम विघ्नों को जला कर क्षार कर सको। जिसमें वह शक्ति होती है, आत्मबल होता है, साहस और दृढ़ता होती है उसका आकाश के नक्षत्र कुछ बना-बिगाड़ नहीं सकते। किन्तु तुम तो नक्षत्रों के दर्शन-मात्र से, भावी अमंगल की आशंका मात्र से प्रकम्पित और भयातुर हो। फिर तुममें वह पौरुष की ज्योति रही कहाँ ? अब मैं तुम्हारे यहाँ रुक नहीं सकती।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पृष्ठ ४६

शब्दार्थ :—स्वर्णखचित—सोने के तारों से जड़ा हुआ। उत्तरीय—दुपट्टा। जीवन-निशीथ—जीवन रूपी रात्रि।

मेरे जीवन-निशीथ ....महोत्सव है न?

शक-शिविर में ध्रुवस्वामिनी के साथ चन्द्रगुप्त का प्रवेश हो रहा है। ध्रुवस्वामिनी प्रसन्न है। चन्द्रगुप्त भी ध्रुवस्वामिनी के साहचर्य के कारण प्रसन्नता का अनुभव करता हुआ कहता है कि मेरे जीवन की अँधेरी रात में तुम स्थिर प्रकाश फैलाने वाले ध्रुवतारे की तरह हो जिसमें एक विचित्र आलोक है और भास्वरता है। यानी चन्द्रगुप्त के कहने का आशय यह है कि अब तक मेरा जीवन एकाकीपन के कारण अन्धकारपूर्ण रात्रि की भाँति था, किन्तु अब तुम्हारे (ध्रुवस्वामिनी के) साथ आ जाने के कारण लगता है मानों उसके जीवन के आकाश में एक ज्योति-नक्षत्र आ गया हो जिसमें प्रकाश-पुंज और ज्योति-राशि भरी पड़ी हो। अतः मैं आज क्यों न प्रसन्न होऊँ? आज तो मेरे जीवन में एक त्योहार आ गया है, पुण्य पर्व आ गया है। आखिर शत्रु से संघर्ष करने का दिन वीरों के लिए महोत्सव का ही तो दिन होता है। और उसमें तब विशेष रूप से जब कि प्राणों का अनुराग ले कर कोई उस मरण वेला में भी साथ हो। ध्रुवस्वामिनी के इसी साहचर्य के कारण चन्द्रगुप्त उक्त घड़ी को महोत्सव मानता है।

पृष्ठ ४७-४८

शब्दार्थ :—अन्तःपुर—रनिवास। प्रवंचक—धोखा देने वाला। रक्ताक्त—खून से भरा हुआ। कलेवर—शरीर।

तृतीय अङ्क

पृष्ठ ४९

शब्दार्थ :—प्रकोष्ठ—छोटी कोठरी। पादपीठ—पीढ़ा।

पृष्ठ ५०

शब्दार्थ :—इन्द्रजाल—मायाजाल, जादू। स्वस्त्ययन—उपद्रव शान्ति के लिए किया जाने वाला एक विशेष धार्मिक विधान।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पृष्ठ ५१

शब्दार्थ :—सन्दिग्ध चित्त—सन्देहपूर्ण हृदय। निर्वासित—निकाल-बाहर किया। बलिपशु—बलि में हत्या किये जाने वाले पशु की भाँति। अकरुण —निष्ठुर। गर्हित—निन्द्य, दूषित। मिथ्या—झूठ। वेदान्त—उपनिषद्। रक्षणीया—रक्षा के योग्य। पैशाचिक—दानवी।

पृष्ठ ५२

शब्दार्थ :—जन-संहार—लोगों की सामूहिक हत्या। लोथ—शरीर। नियामक—निर्माता, विधान बनाने वाला।

आप धर्म के नियामक ……… ……ले लेते हैं ?

इन पंक्तियों में मंदाकिनी ध्रुवस्वामिनी की दुर्दशा देख कर पुरोहित से पूछती है कि आर्य! आप धर्म-विधान के निर्माता हैं। धर्म के व्यवस्थापक हैं। आपके धर्म के विधान में क्या नारियों की सम्मति और सुरक्षा का कोई मूल्य नहीं? आप बिना नारियों की राय जाने हुए उन्हें वैवाहिक बन्धन में बाँध कर पुरुषों के हाथ में सौंप देते हैं। ऐसा करते समय नारियों के समस्त अधिकारों को आप छीन लेते हैं। आप यह कल्पना कर लेते हैं कि पुरुष अब से अपनी पत्नी के समस्त सुखों, लालसाओं और कामनाओं की पूर्त्ति सहानुभूति रख कर करने की चेष्टा करेंगे और उसके साथ सहयोग भाव बरतेंगे। मात्र इसी परिकल्पना से आप संतुष्ट हो जाते हैं। किन्तु वैवाहिक विधान बनाते समय आप क्या कोई ऐसा नियम नहीं बनाते जिससे आपत्ति के समय, पुरुषों द्वारा अपमान, निरादर, उपेक्षा या असहयोग के समय, नारी अपनी सुरक्षा या अपनी आत्म-मर्यादा की रक्षा कर सके? पुरुषों के अत्याचार से सुरक्षित रहने का कोई विधान आप क्यों नहीं बनाते? केवल इस कल्पना से संतुष्ट रह जाना तो ठीक नहीं कि पुरुष अपनी पत्नी से समरसता का भाव बरतेंगे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आज तुम्हारी विजय .... उत्साह रखता है।

कोमा जब ध्रुवस्वामिनी से शकराज का शव माँगने आती है तो वह उसे फटकारती है और दण्ड देने की धमकी देती है। इसी पर कोमा कहती है कि रानी तुम भी स्त्री हो। एक स्त्री एक स्त्री की मनोव्यथा को आसानी से समझ सकती है। प्रेम की पीड़ा की पहचान किस नारी को नहीं होती है! नारी करुणा, दया, क्षमा, प्रेम और त्याग का ही दूसरा नाम है। ये ही शाश्वत नारीत्व के गुण हैं। यह संभव है कि आज विजयोल्लास में तुममें पुरुषों के गुण उभर आये हैं—कठोरता, नृशंसता और दर्प के भाव जग गये हों, जिसके अन्धकार से अभिभूत हो कर तुम्हारा स्थायी नारीत्व ढक गया हो, छिप गया हो, यानी तुम्हारी कोमलता, करुणा, क्षमा और दया का भाव क्षण भर के लिए दब गया हो किन्तु प्रेम का प्रदीप सब नारियों के जीवन में एक बार अवश्य जलता है। हर नारी के जीवन का आँगन एक दिन प्रेम की दीपमालिका से ज्योतित और आलोकित हो उठता है। तुम्हारे भी जीवन में वह प्रणय-प्रदीप जला होगा, निश्चय ही तुमने भी प्रेम की दीवाली जलायी होगी। तुम्हारे भी जीवन में प्रेम के उस प्रकाश का पर्व आया होगा जिसमें एक हृदय दूसरे के हृदय को जानने का प्रयास करता है, दूसरे के हृदय से परिचित हो कर उसके निकट जाता है, उसके दुर्गुणों को भुला कर केवल गुणों को देखता है और सबसे बढ़ कर इतना उदार हो जाता है कि उसके सामने अपना जीवन अर्पण करने को तैयार हो जाता है। यानी प्रेम-दीप के जलते ही प्रेमिका का हृदय प्रेमी के अवगुणों को नहीं देख कर उसकी निकटता का इच्छुक हो जाता है तथा अपने प्रेमी के चरणों पर अपने जीवन के पुष्प को न्योछावर करने को सहसा तत्पर हो जाता है। प्रेम के प्रकाश में ये गुण होते हैं। मैंने भी प्रेम की दीवाली जलायी थी। अपना जीवन-सर्वस्व अपने प्रिय को उत्सर्ग कर दिया था। आज उसी प्रिय की लाश तुमसे मैं माँगने आयी हूँ। तुम्हें वह शव लौटा देने में संकोच नहीं करना चाहिये।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शब्दार्थ :—निष्पीड़न—अत्यधिक पीड़ा। शाश्वत—स्थायी। आलोक—प्रकाश। उपकृत—उपकार करना। बावली—पगली।

पृष्ठ ५४

शब्दार्थ :—मध्य-बिन्दु—केन्द्र-स्थान। प्रवर्त्तन-चक्र—कार्य-संचालन करने वाला घेरा।

नारी-हृदय ....रोक रहा है।

ध्रुवस्वामिनी रामगुप्त की पत्नी है किन्तु चन्द्रगुप्त की अनुरागिनी है। वैवाहिक सम्बन्ध रामगुप्त से होने से वह चन्द्रगुप्त से उन्मुक्त भाव से अपना प्रेम-व्यापार नहीं कर सकती है। अतः उसके हृदय में एक विचित्र विकलता और अस्तव्यस्तता है। वैवाहिक सम्बन्ध ही उसके प्रेम-पथ में काँटे की तरह बिछ गया है। मन्दाकिनी इसका अनुभव करती है और कहती है कि जिस प्रकार कुम्भकार का चक्र अपनी सरलता से तभी घूमता है जब कि कील ठीक उसके मध्य में गड़ा हो। वह कील जब केन्द्र से हट जाता है तो उस चक्के के घूमने में कठिनाई उत्पन्न हो जाती है। इसी भाँति नारी का हृदय भी होता है। उसके जीवन का चक्र भी सरल रूप से तभी चल सकता है जब उसके केन्द्र यानी हृदय से अलग हट कर कोई कील की तरह गड़ नहीं जाय। यदि कील बन कर कोई उसके हृदय से अलग गड़ जाय तो उसके जीवन का चक्र सरल सहज गति से चल नहीं पाता।

ध्रुवस्वामिनी का जीवन-चक्र भी तभी सम्यक् गति से चल सकता था जब उसके हृदय के केन्द्र में चन्द्रगुप्त की कील को यानी अनुराग को मुक्त भाव से गड़ने दिया जाता किन्तु वह चन्द्रगुप्त के प्रति हृदय में अनुराग भाव रख कर भी उससे अनुराग करने को स्वतंत्र नहीं है। विवाह की जिस वेदी पर रामगुप्त के साथ पाणिग्रहण करने के समय शास्त्र का मंत्र पढ़ाया गया था आज वही मंत्र उसके जीवन के चक्र में ऐसी जगह कील की तरह गड़ गया है जो केन्द्र-बिन्दु नहीं है। अतः वही एक मंत्र उसके जीवन के चक्के को सम्यक् गति से चलने में बाधक सिद्ध हो रहा है। अन्यथा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उसका जीवन-चक्र ठीक से चलता। कहने का आशय यह है कि रामगुप्त से जो ध्रुवस्वामिनी का वैवाहिक सम्बन्ध शास्त्रीय रूप से हो चुका है वही उसे चन्द्रगुप्त से स्वच्छंद रूप से प्रेम करने की स्वतंत्रता नहीं दे रहा है। किन्तु प्रेम तो है उसे चन्द्रगुप्त से ही। ऐसी अवस्था में उसके जीवन का चक्र सरल गति से चल ही कैसे सकता है? अस्तव्यस्तता और विकलता, इसीलिए स्वाभाविक है। मन्दाकिनी को यह अनुमान हो तो जाता है कि निश्चय ही ध्रुवस्वामिनी चन्द्रगुप्त की प्रेमिका है, नहीं तो यह बाधा होती ही क्यों?

पृष्ठ ५५

विधान की स्याही..................ध्रुव देवी मेरी है।

मन्दाकिनी जब चन्द्रगुप्त के हृदय में नैतिक साहस और पौरुष की पुकार जगा कर उसे ध्रुवस्वामिनी को पत्नी रूप में ग्रहण करने के लिए प्रोत्साहित करती है तो वह कह उठता है कि आज भाग्य की विडम्बना से ऐसी स्थिति आ गयी है कि जिसे मैंने अपने हृदय की सम्पूर्ण भावना से आरम्भ से ही प्यार किया है उसे ही मैं अपनी कहने में संकोच का अनुभव कर रहा हूँ। जिस प्रकार स्याही की एक बूँद गिर कर किसी लेख की लिपि को अपनी कालिमा से पोत कर मिटा देती है उसी प्रकार सामाजिक विधान भी किसी के भाग्य को मिटा देता है। ध्रुवस्वामिनी मेरी थी। वह मेरी वाग्दत्ता पत्नी थी। मैं ही इस सम्पूर्ण राज्य का अधिकारी था। भाग्य के लेख में तो ध्रुवस्वामिनी और गुप्त-साम्राज्य मेरे लिए अंकित किये गये थे। किन्तु, समाज के विधान ने बड़े भाई को पैतृक सम्पत्ति का उत्तराधिकारी माना है। इसी बल पर मेरी आँखों के सामने गुप्त-साम्राज्य का वैभव मुझसे छिन गया और मेरी वाग्दत्ता पत्नी ध्रुवस्वामिनी भी रामगुप्त से ब्याह दी गयी। सच ही सामाजिक नियमों की स्याही के एक बिन्दु ने ढुलक कर मेरे उज्ज्वल भाग्य-लेख की लिपि पर अपनी कालिख पोत कर उसे मिटा दिया।

समुद्रगुप्त ने चन्द्रगुप्त को ही अपने राज्य का उत्तराधिकारी घोषित किया था और उसकी वीरता पर मुग्ध होकर ध्रुवस्वामिनी के पिता ने चन्द्र-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गुप्त के लिए ही समुद्रगुप्त को उसे उपहारस्वरूप भेंट की थी। पर न राज्य, न ध्रुवस्वामिनी, दोनों में एक भी चन्द्रगुप्त को नहीं मिला। समुद्रगुप्त की मृत्यु के बाद समाज ने दोनों ही रामगुप्त को दे दिये। अतः उसका कथन ठीक ही था कि सामाजिक विधान की स्याही के एक बिन्दु से ही भाग्य की लिपि मिट जाती है।

पृष्ठ ५६

शब्दार्थ :—क्षीव—उन्मत्त, पागल। परित्यक्ता—त्यागी हुई। हतभागिनी—दुर्भाग्यशालिनी। निमज्जित—डूबा हुआ।

पृष्ठ ५७

शब्दार्थ—दुर्विनीत—अविनयी। पामरों—दुष्टों। प्रतिवाद—विरोध, खंडन। लौह-शृंखलाओं—लोहे की जंजीरों। दुर्दैव—दुर्भाग्य। क्रीत-दासी—खरीदी हुई दासी।

पृष्ठ ५८-५६

शब्दार्थ :—दस्यु—लुटेरा, डाकू। अनुरक्त—प्रेमपूर्ण। कालसर्पिणी—जो साँपिन मृत्यु ले कर आती है। निर्वाचित—चुना हुआ।

पृष्ठ ६०-६१

शब्दार्थ :—खड्गों—तलवारों। अभियुक्त—दोषी, अभियोग जिस पर लगाया जाय। वाग्दत्ता—वचन द्वारा दी हुई। प्रलाप—बकवास। राज-किल्विष—पापपूर्ण आचरण करने वाला राज्यापराधी।

पृष्ठ ६२

शब्दार्थ :—प्रव्रजित—संन्यासी। राजकिल्विषी—राज्यापराधी। अंक-गामिनी—स्त्री।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ध्रुवस्वामिनी के गीतों की व्याख्या

प्रथम अङ्क

पृष्ठ १६

शब्दार्थ :—कसक—पीड़ा। विनम्र—विनीत। अस्तित्व—सत्ता। नीरव गाथा—मौन-कथा। वसुधा—पृथ्वी।

यह कसक.................वह जा।

जब रामगुप्त शकराज के अपमानपूर्ण संधि-प्रस्ताव को मान कर ध्रुवस्वामिनी को शक-शिविर भेजने को बद्ध-परिकर हो जाता है तो ध्रुव-स्वामिनी की असहायावस्था, रामगुप्त की नृशंसता, गुप्त कुल की मिटती हुई मर्यादा और चन्द्रगुप्त की दुःस्थिति को देख कर मन्दाकिनी सिसक उठती है।

वह अपनी आँखों से उमड़े हुए अश्रु-कणों को सम्बोधित कर कहती है कि हे मेरी आँखों के आँसू! तू मेरे हृदय में उठने वाली पीड़ा, व्यथा और टीस को सहता रह, बर्दाश्त करता रह। तू आँखों से छलक कर धरती पर न चू। आँसू तो दुर्बल व्यक्ति गिराते हैं। तेरे गिरने से मेरी दुर्बलता व्यक्त होगी। मेरी शक्ति का अभिमान तेरे गिरने से विनष्ट हो जायगा। इस-लिए विनीत भाव से स्थिर रह कर तू मेरे हृदय का अभिमान बन कर सदा मेरे अस्तित्व की याद दिलाता हुआ यहीं रह, इन आँखों में ही रह, बाहर मत गिर। तेरे गिरने से मेरी वेदना व्यक्त होगी और मेरा अभिमान जाता रहेगा। अतः तू मुझमें आत्म-चेतना का भाव जगाता रह जिससे मुझे अपने अस्तित्व का परिज्ञान सर्वदा बना रहे। मुझे यह ज्ञात होता रहे कि मेरा भी कोई अस्तित्व है ताकि मैं अन्याय-अत्याचार के विरुद्ध लड़ती रहूँ, विद्रोह करती रहूँ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

फिर आँसू को सम्बोधित करती हुई मन्दाकिनी कहती है कि तू प्रेम का प्रतिरूप बन कर, प्रेम-दूत बन कर छलक और संसार के कोने-कोने में प्रेम का संदेश फैला कर अपनी मौन-कथा कह जा। यानी आँसू अन्तस्तल की व्यथा और वेदना की उपज हैं। उनके निकलने से लोग द्रवीभूत और दुखी ही होते हैं। पर मन्दाकिनी कहती है कि तुझे देख कर लोग दुखी न हों बल्कि तू प्रेम का पाठ पढ़ाने इन आँखों से छलक और मौन भाव से नारी-जीवन की करुण-गाथा संसार के कोने-कोने में मुखरित करता रह।

आगे वह आँसू से कहती है कि यह पृथ्वी दुःख से अभिभूत है। हे मेरे आँसू। तू अपनी समग्र ममता और दया का भाव ले कर अपने जल-कण से इस व्यथापूर्ण तापित शापित धरित्री पर शीतलता फैलाता हुआ वह जा। यदि तुझे बहना ही है, आँखों में रुकना नहीं है तो इस चिर दग्ध दुखी वसुधा को अपनी शीतलता से सींच कर उसके ताप और ज्वाला का हरण कर ले। यही तेरी सार्थकता है।

पृष्ठ ३३

शब्दार्थ :—जलधर—बादल। संकीर्ण—छोटे, तंग। कगारों—किनारों। शत-शत—सौ-सौ। पादप—पेड़। गिरि पथ—पर्वत के पथ का। अथक—जो थके नहीं।

पैरों के नीचे .... सब झेल चले।

प्रस्तुत गीत अभियान गीत (Marching Song) है जिसे मन्दाकिनी ने गाया है। ध्रुवस्वामिनी और चन्द्रगुप्त शक-शिविर की ओर जाते हैं तभी मन्दाकिनी दोनों का उत्साह वर्द्धन करती हुई गाती है कि पर्वत की चोटी पर चलने वाले पथिक के पाँवों के नीचे बादल फैले हुए हों जिनसे रह-रह कर बिजलियाँ कौंध जाती हों; पर्वत से झरने वाले सैकड़ों झरने तूफानी गति से संकीर्ण तटों से टकराते हुए प्रवाहित होते हों, वायु विकलता से भर कर स्तब्ध हो गयी हो, आँधी के पूर्व की खामोशी हो और फिर आँधी या पवन का वह उद्दाम वेग चलने लगा हो जिसमें पेड़ों की डालियाँ झुक कर अपनी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जड़ों को, मूलों को छू जाती हों ऐसी भयंकर परिस्थिति में भी पर्वत की चोटी पर चलने वाला अश्रान्त पथिक सब विघ्न-बाधाओं को झेल कर आगे बढ़ता ही जाता है।

यानी उच्चादर्श और लक्ष्य के पर्वत पर चढ़ने वाला कर्मवीर पथिक मार्ग में आने वाली बाधाओं और विपत्तियों के बादलों की परवाह किये बिना, सँकड़ी पगडंडी की बगल से प्रवहमान निर्झर से भयभीत हुए बिना, तूफान की भयंकरता और प्रलय जैसी आँधी से डरे बिना, सारी आपदाओं को सहते हुए आगे बढ़ता ही जाता है।

पृथ्वी की आँखों में..................सब झेल चले।

शब्दार्थ :—पृथ्वी की आँखों में—दुनिया की दृष्टि में। तम—अन्धकार। प्रतिमा—मूर्त्ति।

मन्दाकिनी कहती है कि जिस प्रकार आँखों में पुतली होती है उसी प्रकार दुनिया की आँखों में पुतली की भाँति प्यारा बन कर कर्मवीर को अपने निर्दिष्ट पथ की ओर अग्रसर होना चाहिये। अपनी मूर्त्ति का आप निर्माण करता-सा वह निर्जन अन्धकार में आलोक-स्तूप, ज्योति-स्तंभ बना बढ़ता रहे और विघ्नों के अन्धकार में अपने विश्वास और साहसपूर्ण चरण से प्रकाश विकीर्ण करता हुआ अग्रसर होता रहे। चाहे उसके मार्ग में कितनी ही पीड़ाएँ क्यों न आवें, कितने ही कष्ट क्यों न उसे उठाने पड़ें उसे सारी पीड़ाओं को धूल की भाँति उड़ाते हुए, विघ्न-बाधाओं को अपने चरणाघातों से ठुकराते हुए, विपत्तियों और कष्टों पर मुस्कुराते हुए यानी बिना किंचित् परवाह किये हुए आगे, निरंतर आगे बढ़ते चलना चाहिये।

खिलते हों..................सब झेल चलें।

शब्दार्थ :—क्षत—घाव, फफोला। तमिस्रा—रात्रि। ताण्डव नर्त्तन—शिव के तीन नृत्यों—नादान्त, प्रदोष और ताण्डव—में से एक नृत्य जो सृष्टि के संहार के समय शिवजी करते हैं। स्वर-सप्तक—संगीत के सात

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वर—सा, रे, ग, म, प, ध, नि (षडज, ऋषभ, गांधार मध्यम, पञ्चम, धैवत् और निषाद)। भैरव रव—भयंकर स्वर, शिव के तांडव नृत्य के क्षण का स्वर। स्वेद धार—पसीने की धार। कपिशा—एक नदी।

मन्दाकिनी चन्द्रगुप्त को प्रोत्साहित करती हुई कहती है कि जिस प्रकार अन्धेरी रात में आकाश में तारों के फूल खिलते हैं उसी भाँति वीर के शरीर पर व्यथाओं, कष्टों और वेदनाओं की काली रजनी में घावों या फफोलों के फूल खिल रहे हों, उसके डेग-डेग पर प्रलय का ताण्डव नृत्य हो रहा हो (वह ताण्डव नृत्य जो प्रलय-काल में शिव करते हैं) तथा उस भयंकर नृत्य के कारण सभी दिशाएँ मौन हो गयी हों; सातो स्वर शान्त हो गये हों; चारों ओर भयंकर स्वर निनादित हो रहा हो; कोलाहल पर कोलाहल मचा हो, रात्रि भय-प्रकम्पित हो उठी हो; चलते-चलते थकावट के कारण शरीर से निकलने वाली स्वेद-धारा की नदी बह गयी हो तब भी वीर व्यक्ति अपने मार्ग में रुकता नहीं बल्कि सारी कठिनाइयों को झेल कर भी निरंतर आगे और ऊपर पर्वत के पथ पर बढ़ता ही चलता है। वह रुकने का नाम नहीं जानता, विश्राम करना नहीं जानता। वह तो वहीं विश्राम करना जानता है जहाँ से आगे कोई राह ही नहीं हो।

विचलित हो अचल ....झेल चले।

शब्दार्थ :—अचल—पर्वत। क्रन्दन—रुदन। नीलकंठ—भगवान शंकर।

मन्दाकिनी कहती है कि उच्चादर्शों के पर्वत की ओर जाने वाले पथिक के मार्ग में कितनी भी बाधाएँ हों वह आगे बढ़ता ही जाता है। चाहे पर्वत भी अपना मौन और अपनी स्थिरता त्याग कर चंचल या चलायमान क्यों नहीं हो जाय; उसके चलने से धरा डोलने लगे या ऐसा स्वर मुखरित क्यों न होने लगे कि वीरों का साहस भी छूट जाय, उस कठोर पर्वत-राज की शोभा चाहे छिन्न-भिन्न क्यों न हो रही हो फिर भी गिरि-पथ का अथक पथिक रो-कलप कर आर्त्त पुकार नहीं करता, वह आत्म-निर्भर हो, अपने साहस, शक्ति और दृढ़ आत्म-बल पर विश्वास कर निर्भीक भाव से

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आगे बढ़ता ही चलता है। वह अपने जीवन की ज्वाला को. अपने मार्ग में आने वाली बाधा-विपत्तियों की अग्नि-लपटों को पी कर उसी भाँति शिव-स्वरूप हो कर आगे बढ़ता है जैसे शिव ने शान्त भाव से सृष्टि-कल्याण के लिए हलाहल पान कर उसकी ज्वाला को पचा लिया था जिसके फलस्वरूप वे नीलकंठ हो गये थे। ऐसा वीर पथिक आराम को हराम समझता है, विश्राम का नाम नहीं लेता है, शान्ति की चर्चा नहीं करता है बल्कि इन सबको फटकारते-ललकारते हुए वह अविराम गति से आगे बढ़ता ही चलता है। विश्राम और शान्ति तो वीर पथिक के जीवन में शाप बन कर आते हैं। जिसे आगे जाना है, लम्बी राह तय करनी है, लक्ष्य की ऊँची मंजिल पर पहुँचना है वह विश्राम और शान्ति का हाल क्या जाने ?

मन्दाकिनी के कहने का आशय है कि ऐसे ही वीर पथिक की भाँति हे ध्रुवस्वामिनी और चन्द्रगुप्त ! तुम सबको अनेक बाधाओं, कष्टों को सह कर लक्ष्य-प्राप्ति के हेतु अविराम गति से आगे बढ़ना चाहिये।

द्वितीय अङ्क

पृष्ठ ३४

यौवन ! तेरी ••• ... ... कहाँ से आया ?

कोमा प्रस्तुत गीत गाती है। वह शकराज की अनुरागिनी है। वह पूर्ण यौवना है—ज्ञात यौवना। अपने यौवन का उपभोग वह खुल कर करना चाहती है। यह यौवन क्षणिक और अस्थिर है जो ! वह भावना और अनुभूति से पूर्ण गीत गाती हुई कहती है कि हे यौवन ! तुम्हारी छाया चंचल है। यह टिकने वाली, शाश्वत छाया नहीं है। यह तो चार दिनों की चाँदनी की भाँति जीवन में आती है और फिर अँधेरी रात छोड़कर चली जाती है। अतः हे यौवन ! तुम्हारी छाया के नीचे बैठ कर मैं उस रस का घूँट भर भी तो पान कर लूँ जो तुम ले कर आये हो ! यह रस प्रेम का है। अतः मैं प्रेम-रस का पान तो कर लूँ ! मेरे हृदय का प्याला रिक्त ही पड़ा था। पता नहीं कब तुम उस रिक्त प्याले में मदिरा बन कर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हे छली! समा गये। मेरे जीवन की बाँसुरी छिद्र से भरी थी पर उसमें स्वर नहीं था। तुम उसमें स्वर की अनन्त मादकता ले कर लहरा उठे हो। ओ पथिक! तुम क्षण भर के लिए ही तो आये हो, तनिक यह तो बताओ कि तुम किस अज्ञात स्थान से आ गये!

कोमा के कहने का आशय यह है कि यौवन क्षणभंगुर है। जीवन के वन में यौवन वसंत की भाँति क्षण भर के लिए आता है। किन्तु यौवन की छाया बड़ी सुखद होती है। कौन नहीं उस यौवन की छाँह में क्षण भर के लिए बैठ कर उस प्रेम-रस का पान कर लेना चाहता है जो यौवन के आगमन पर सहसा छलक उठता है। फलतः कोमा भी उस प्रेम के फेनिल रस का पान करना चाहती है जो उसके जीवन में यौवन के आने से स्वतः उमड़ पड़ा है। जब तक यौवन का प्रवेश नहीं होता जीवन का प्याला शुष्क और रीता पड़ा रहता है। लोगों को पता भी नहीं चलता कि रजनी के किस पिछले पहर में यौवन वसंत की भाँति आ जाता है और उसके आते ही प्राणों की मतवाली कोयल प्रेम की पुकार करने लगती है। उसका कथन है कि उसके जीवन-प्याले में छलिया की भाँति चुपके-चुपके कब यह यौवन मदिरा बन कर समा गया इसका उसे पता नहीं चला। मदिरा बन कर समा गया कहने का यह तात्पर्य है कि यौवन के आते ही मन उन्मत्त हो जाता है, प्रमत्त हो जाता है। एक विचित्र-सी मादकता की घटा प्राणों पर छा जाती है। इस यौवन के आते ही जीवन की बाँसुरी कितने मीठे सुर भरने लगती है! लगता है जीवन रूपी बाँसुरी के सूने छिद्रों में संगीत का मधुर सुर बन कर यौवन ही लहरा उठता है। कोमा को, मुग्धा कोमा को पता ही नहीं चलता है कि किसी सराय में क्षण भर टिकने वाले बटोही की भाँति जीवन की सराय में यौवन का यह बटोही कहाँ से, किधर से आ गया?

तुलना कीजिये :—

मधुमय वसंत जीवन वन के वह अंतरिक्ष की लहरों में
कब आये थे चुपके से तुम रजनी के पिछले पहरों में!

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्या तुम्हें देख कर आते यों, मतवाली कोयल बोली थी
उस नीरवता में अलसायी कलियों ने आँखें खोली थीं !

—प्रसाद : कामायनी : काम सर्ग

पृष्ठ ३८

अस्तालच पर……………………………तरु की डाली है।

शब्दार्थ :—अस्ताचल—पश्चिम का वह पर्वत जिसके पीछे सूर्य डूब जाता है। अलक—केश। मानिक—एक बहुमूल्य लाल पत्थर।

प्रस्तुत गीत शक-दुर्ग में नर्त्तकियाँ तब गाती हैं जब शकराज को रामगुप्त द्वारा संधि-प्रस्ताव मान लिये जाने का संदेश खिङ्गल सुनाता है। विजयोल्लास में नर्त्तकियों द्वारा गाये गये इस गीत में चित्रात्मकता और मादकतापूर्ण भाव-तरंग की शोभा देखने ही योग्य है।

पश्चिम दिशा में, अस्ताचल की ओट में पड़े हुए सूर्य अब अस्त हो रहे हैं। उनकी अंतिम लालिमा फैल रही है और अंधकार आ रहा है। नर्त्तकियाँ कहती हैं कि संध्या की इस वेला में जब कि सूर्य अपनी लालिमा बिखेर कर अस्त हो रहा है पश्चिम की ओर अस्ताचल पर युवती संध्या ने अपनी खुली घुँघराली काली बाल की लटें फैला दी है। लो, अब माणिक्य पत्थर रूपी मदिरा की निराली लाल धारा बहने लगी है। पहाड़ियों ने अपनी झीलों की प्याली रत्न से भर ली है। पेड़ की डालियाँ अपने से लिपटी लताओं को चूमने के लिए मानों झुक रही हैं।

संध्या के मादकतापूर्ण वातावरण का चित्रण इन पंक्तियों में कवि ने किया है। संध्या एक ओर तरुणी की भाँति अंधकार रूपी अपने बाल की काली घुँघराली लटों को खोल कर फैला रही है। यानी अंधकार फैल रहा है। डूबते सूर्य की सुनहली किरणें इस प्रकार लगती हैं मानों माणिक्य की भाँति लाल मदिरा की अनोखी धारा अब प्रवाहित होने लगी हो। पहाड़ियों की झीलों पर पड़े सांध्य तारों का प्रतिबिम्ब ऐसा लगता है मानों वे रत्न हों जिन्हें पहाड़ियों ने अपनी झीलों के प्याले में भर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लिया हो। उधर पेड़ की डालों से लिपटी लताएँ हैं जिन्हें चूमने के लिए वे डालियाँ और भी झुक रही हैं।

यानी प्रकृति की इस पृष्ठभूमि का वर्णन कर नर्त्तकियाँ यह कहना चाहती हैं कि यह तो विलास की वेला है। प्रकृति में ही मदिरा की मादकता है, आलिंगन, परिरम्भन और चुम्बन की आकुलता है तथा उन्मुक्त विलास का प्रदर्शन है फिर मनुष्य क्यों नहीं ऐसी घड़ी में यौवनोन्माद से प्रमत्त हो विलास करे।

इन पंक्तियों में प्रकृति का मानवीकरण किया गया है :—

"यह लगा पिघलने........................ प्याली खाली है।"

नर्त्तकियाँ कहती हैं कि इस मादक सांध्य-वेला में प्रेम-कलह से क्रुद्ध, अपने प्रियतम से रूठी हुई, प्रेमिकाओं के हृदय का मान भी गलने-पिघलने लगा है। अब वे अपने अधरों पर मंद हास भर कर प्यार भरी बातों से अपने प्रियतम के हृदय में प्यार की मीठी लहर और मधुर-तरंग उठाने लगी हैं। निकुञ्जों से या झाड़ियों की झुरमुट से विहंगों के अनुराग भरे जोड़े इस मधुर रात में अपने प्राणों की खाली प्याली को प्रेम के मधु से भरने निकल पड़े हैं। लगता है जैसे अब तक इनके हृदय की प्याली प्रेम-रस से भर नहीं पायी है, परिपूर्ण नहीं हो पायी है।

यानी यह वह वेला है जिसमें मानिनियों का भी मान भंग हो रहा है। उनका हृदय प्रियतम के आलिंगन पाश में आबद्ध होने के लिए जैसे मचल पड़ा हो जिससे उनका मान गल-पिघल गया है। उनका कृत्रिम रोष अब प्रिय मिलन की आकुलता में परिवर्तित हो कर मोम की भाँति गल गया है। अब तो वे प्रियतम की सुषुप्त प्रणय भावना को हँसी की फुहार से जगाने लग गयीं। पक्षियों के जोड़े भी अपनी प्रणय-तृप्ति के लिए निकल पड़े हैं। ऐसी वेला में तो सबको अपने तृषित प्राणों को प्रेम-जल से जुड़ा लेना चाहिये।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तुलना कीजिये :—

चाँदनी रात है, मंद मधु वात है
तारकों का धवल दल मगन सो रहा
वाँसुरी वज रही, मानिनी सज रही
प्राण के मान का अब दलन हो रहा
दूर के गाँव में, नीम की छाँव में
दो विकल प्राण का मधु मिलन हो रहा।

—केदारनाथ लाभ

भर उठी प्यालियाँ........................ बाधा डाली है !

शब्दार्थ :—मकरन्द—पराग, मधु। सौरभ—सुगंध। अनुराग—प्रेम।

शक-दुर्ग में नाचती हुई नर्त्तकियाँ कहती हैं कि सारा वातावरण यौवनोन्माद से भर उठा है। सबके मधु-पात्र फेनिल मदिरा से भर उठे हैं। उस मदिरा में अनेक फूलों की सुगंध और मकरन्द का सम्मिश्रण किया गया है जिससे उसकी मादकता और मधुगंधता और भी तीव्र हो उठी है। इस प्रकार की सुगंध और परागयुक्त मदिरा से भरी प्यालियों को कामिनियों ने प्रेम से पुलकित अधरों से लगा लिया है। लगता है जैसे धरती भी उस मदिरा की मादकता से मदमाने लगी है, उन्मत्त हो उठी है और उधर आकाश में धरती के यौवन की छवि देख कर उसकी ओर झुकने लगा है। सब अपने सुख में आनन्द विभोर हो, आत्म-विस्मृत हो झूम रहे हैं। मानव और प्रकृति सब में अभी अनुराग का उन्माद है, विलास की आकांक्षा है और यौवन का आकर्षण है; सब मदिरा में मत्त झुक झूम रहे हैं; ऐसी स्थिति में केवल तूने ही क्यों बाधा डाल दी है। तुझे भी इस वातावरण की मादकता से कुछ सीख कर यौवन-विलास का आनन्द लेना चाहिये।

यानी नर्त्तकियाँ प्रकारान्तर से शकराज से कहती हैं कि जब सब ओर हर्ष और उमंग है, हास-विलास है, आलिंगन-परिरम्भन है तो फिर तू ही क्यों कोमा के आनन्द में बाधा उपस्थित कर रहा है। तुझे भी उसकी ओर आकृष्ट हो कर उसके प्रेम-रस का पान करना चाहिये।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कुछ प्रमुख प्रश्न

१. ध्रुवस्वामिनी नाटक के आधार पर तत्कालीन सामाजिक अवस्था का वर्णन कीजिये।

२. ध्रुवस्वामिनी नाटक के आधार पर तत्कालीन राजनीतिक स्थिति का परिचय दीजिये।

३. रामगुप्त का चरित्र-चित्रण कीजिये। (प० वि० १९४८ पूरक; बि० वि० १९५५ पूरक)

४. ध्रुवस्वामिनी नाटक की मन्दाकिनी अथवा कोमा का चरित्र-चित्रण कीजिये।

५. "ध्रुवस्वामिनी एक सामाजिक नाटक है"—इस कथन की पुष्टि कीजिये।

६. कोमा के चरित्र में प्रणय और करुणा का अपूर्व सामंजस्य हुआ है।

७. चन्द्रगुप्त का चरित्र-चित्रण कीजिये। (वि० वि० १९५५ वार्षिक; प० वि० १९५१ पूरक, १९५२ पूरक)

८. "ध्रुवस्वामिनी में नारी का आदर्श व्यक्तित्व अभिलक्षित है"—इस उक्ति की समीक्षा कीजिये। (वि० वि० १९५६ वार्षिक)

९. कोमा और ध्रुवस्वामिनी का तुलनात्मक चरित्र-चित्रण उपस्थित कीजिये।

१०. चन्द्रगुप्त और रामगुप्त का तुलनात्मक चरित्रांकन कीजिये।

११. ध्रुवस्वामिनी में वर्णित नारी समस्या पर प्रकाश डालिये।

१२. मन्दाकिनी का चरित्रांकन कीजिये।

१३. शकराज के चरित्र पर प्रकाश डालिये।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi